इंदिरा गांधी
राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ

MEC-108
सामाजिक क्षेत्र और पर्या अर्थशास्त्र

खंड
5
धारणीय विकास

इकाई 13

धारणीय विकास : आधार स्तंभ 5

इकाई 14

हरित लेखांकन और पर्या-लागत-हितलाभ विश्लेषण 26

इकाई 15

सांझी संपदा संसाधन प्रबंधन 45

विशेषज्ञ समिति

प्रो. जय श्री रॉय
जादवपुर विश्वविद्यालय
कोलकाता

प्रो. एस.पी. सिंह
आई.आई.टी. रुड़की

प्रो. एस. संध्या
हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय
हैदराबाद

प्रो. दुराईस्वामी
मद्रास, इस्टीट्यूट ऑफ
डिवलपमैंट स्टडीज

प्रो. पद्मजा मिश्रा
उत्कल विश्वविद्यालय
भुवनेश्वर

डॉ. सुव्रत मण्डल
अम्बेडकर विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

डॉ. सौमेन चट्टोपाध्याय
ZHCES जे.एन. यूनिवर्सिटी
नई दिल्ली

प्रो. गोपीनाथ प्रधान
समाजशास्त्र विद्यापीठ
इ. गा. रा. मुक्त विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. नारायण प्रसाद
समाजशास्त्र विद्यापीठ
इ. गा. रा. मुक्त विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. कोस्तुव बारिक
समाजशास्त्र विद्यापीठ
इ. गा. रा. मुक्त विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

श्री सोगतो सेन
समाजशास्त्र विद्यापीठ
इ. गा. रा. मुक्त विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. बी. एस. प्रकाश (संयोजक)
समाजशास्त्र विद्यापीठ
इ. गा. रा. मुक्त विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

पाठ्यक्रम समन्वयक प्रो. बी.एस. प्रकाश

खंड निर्माण दल

इकाई संख्या	इकाई लेखक	IGNOU संकाय सदस्य	संपादन विषयवस्तु (इकाई 13 से 14)
13	डॉ. सुकन्या दास सहा. प्रोफेसर TERI विश्वविद्यालय नई दिल्ली	प्रो. बी. एस. प्रकाश इग्नू नई दिल्ली	प्रो. जय श्री रॉय जादवपुर विश्वविद्यालय कोलकाता
14	सुश्री प्रीति अग्रवाल शोधकर्ता अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन विद्यापीठ जे.एन.यू. नई दिल्ली		**हिन्दी अनुवाद** सुश्री प्राची बागला **अनुवाद परिशोधन** श्री बी.एस. बागला
15	डॉ. इंद्राणी राय चौधरी सह–प्रोफेसर क्षेत्रीय विकास अध्ययन केंद्र जे.एन.यू. नई दिल्ली		

मुद्रण प्रस्तुति

श्री मंजीत सिंह
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

फरवरी, 2017

© *इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2017*

ISBN : -

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बगैर किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (चक्र मुद्रण) द्वारा अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी नई दिल्ली–110068 से अथवा इग्नू की आधिकारिक वेबसाइट www.ignou.ac.in *से प्राप्त की जा सकती है।*

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से निदेशक, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ द्वारा मुद्रित और प्रकाशित।
लेजर टाइप सैट– ग्राफिक प्रिंटर्स, 204, पंकज टॉवर, मयूर विहार फेस 1, दिल्ली – 110091
मुद्रण –

खंड परिचय : धारणीय विकास

वर्तमान खंड (खंड संख्या 5) की विषय वस्तु धारणीय विकास है और इसमें तीन इकाइयां हैं।

इकाई 13 में धारणीय विकास के आधार स्तंभों, उद्देश्यों की बहुलता और विकास प्रक्रियाओं एवं परिणामों के बहु-विषयायामी स्वरूप के लिए एक सैद्धांतिक रूपरेखा की चर्चा से बातचीत को प्रारंभ किया गया है। समय-समय पर आयी धारणीय विकास की अनेक संकल्पनाओं के विवरण के बाद इस सिद्धांत के प्रति दो आधारभूत दृष्टिकोणों : पूँजी दृष्टिकोणों और पर्यावरण दृष्टिकोण की व्याख्या की गई है। फिर निर्बल एवं सबल धारणीयता में भेद स्पष्ट किया गया है। इससे आगे इसी इकाई में धारणीयता के तीन प्रमुख सूचकों – CSD, MDG और SDG पर चर्चा की गई है। राष्ट्रीय संदर्भ में धारणीय विकास नीति के क्रियान्वयन के कुछ आयामों को स्पष्ट करने के लिए भारत में अपनाई गई धारणीय विकास युक्तियों एवं व्यवहार पर भी चर्चा की गई है।

इकाई 14 में हरित लेखांकन और पर्यावरणीय लागत हितलाभ विश्लेषण से संबंधित है। पहले बहुत समय से प्रयुक्त ''राष्ट्रीय लेखांकन पद्धति'' समझाई गई है। इसमें केवल बाजार विपणीय एवं मौद्रिक रूप में व्यक्त हो सकने वाली वस्तुएं और सेवाएं ही सम्मिलित रहती हैं। इस प्रक्रिया में पर्यासंसाधनों के उपभोग-प्रयोग की पूरी तरह अनदेखी हो जाती है। फिर हम यह बात उठाते हैं कि इस परंपरागत विधि में क्या परिवर्तन करने आवश्यक हो गए हैं। यहां पर भौतिक लेखांकन, प्रदूषण व्यय लेखांकन, हरित सूचकों के विकास आदि पर चर्चा की गई है। पर्या लेखांकन की उपादेयता की एक झांकी प्रस्तुत करते हुए, अंत में, इकाई में पर्या-लागत-हितलाभ विश्लेषण के मुद्दे पर चर्चा की गई है।

इकाई 15 में सांझी संपदा संसाधनों (CPRs) और उनके प्रबंधन की चुनौतियों से संबंधित हैं। CPRs के लक्षणों से प्रारंभ कर यह इकाई इनके प्रबंधन से जुड़े सैद्धांतिक प्रश्नों की विस्तृत व्याख्या करती है। भारत में CPRs पर हुए प्रमुख अध्ययनों की चर्चा के बाद वैश्विक सांझा संपदाओं पर चर्चा हुई है। अंत में, वैश्विक पर्या बाह्यताओं एवं जलवायु परिवर्तन से इकाई का समापन किया गया है।

4th Blank

इकाई 13 धारणीय विकास : आधार स्तंभ

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 सैद्धांतिक संरचना
- 13.2.1 धारणीय विकास का बहु–विषयी स्वरूप
- 13.2.2 संरचनात्मक प्रत्यक्ष दर्शन

13.3 धारणीय विकास : परिभाषाएँ और व्याख्याएँ

13.4 धारणीय विकास के प्रति दृष्टिकोण
- 13.4.1 पूँजी दृष्टिकोण
- 13.4.2 पर्यावरणवादी दृष्टिकोण

13.5 धारणीयता
- 13.5.1 दुर्बल धारणीयता
- 13.5.2 सबल धारणीयता

13.6 धारणीय विकास के सूचक
- 13.6.1 धारणीय विकास आयोग (CSD) सूचक और सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्य (MDG)
- 13.6.2 लेखांकन रूपरेखा और समष्टि - स्तरीय सूचक

13.7 राष्ट्रीय विकास युक्तियों में सूचकों का प्रयोग

13.8 भारत में धारणीय विकास विषयक प्रयास

13.9 सारांश

13.10 शब्दावली

13.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.12 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

13.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- धारणीय विकास (SD) के बहुविषयी स्वरूप को रेखांकित कर पाएंगे;
- धारणीय विकास के गैर-रैखिक, पश्चाप्सारिता और अप्रत्यावर्ती अभिलक्षणों के आधार पर उसके संरचनात्मक प्रत्यक्ष ज्ञान की चर्चा कर पाएंगे;
- ब्रन्टलैंड आयोग एवं अन्य प्रमुख विद्वानों द्वारा बताई गई धारणीय विकास की परिभाषा कर पाएंगे;
- विभिन्न परिभाषाओं से व्यक्त हो रही धारणीय विकास की पाँच मुख्य व्याख्याएँ बता पाएँगे;
- धारणीय विकास के मापन की मुख्य विधियों का वर्णन करते हुए इसके बहुआयामी स्वरूप को पर्याप्त रूप से समझा पाने में उन विधियों की सक्षमता का मूल्यांकन कर पाएँगे;
- ''हिक्सीय धारणीयता'' और ''हार्टविक-सोलो-धारणीयता'' में भेद कर सकेंगे;

- मुख्य अंतरों की चर्चा के आधार पर धारणीयता की निर्बल और सबल संकल्पनाओं की समीक्षा कर सकेंगे;
- धारणीय विकास के मुख्य सूचकों की रूपरेखा बनाते हुए राष्ट्रीय लेखांकन प्रणाली की धारणीय विकास के सामूहिक सूचक प्रदान करने में उपादेयता बता पाएंगे; और
- राष्ट्रीय विकास युक्तियों में धारणीय विकास सूचकों के अनुप्रयोगों और भारत में धारणीय विकास व्यवहारों की व्याख्या कर पाएंगे।

13.1 प्रस्तावना

निरंतर वृद्धिमान जनसंख्या और उपभोग मांग के कारण भारत सहित अनेक देशों में अभी तक अवलोकित संवृद्धि दरों की धारणीयता पर अब संदेह उठने लगे हैं। यदि इस मांग को पूरा करने के लिए वर्तमान संसाधनों का विदोहन होता है तो उससे समाज के स्थिर संसाधन भण्डार पर अतिरिक्त दबाव स्वाभाविक होगा। इसी कारण नीति निर्धारकों और सामाजिक चिन्तकों के बीच में प्रश्न उठने लगे हैं कि क्या अर्थव्यवस्था अपने प्रभावशाली संवृद्धि पथ पर चलती रह सकेगी? और, कितने समय तक? इस चिन्ता को व्यक्त करने की कई विधियां हैं। एक विधि में 'पर्या-पद्चिन्ह' का प्रश्न उठाया जाता है। कहा जाता है कि विश्व की वर्तमान (पर्यातन्त्र पर) मांग का स्तर उसकी क्षमता से 25 प्रतिशत अधिक हो चुका है। कहा जा रहा है कि भारत का अपना 'पर्या पद्चिन्ह' 1961 की तुलना में दुगुना आकार धारण कर चुका है। भारत की प्राकृतिक पूँजी के लिए मांग और उसकी आपूर्ति के बीच संतुलन बिगड़ता जा रहा है, देश 'पर्याऋणी' बनता जा रहा है। कहा जा रहा है कि देश की पर्या परिसंपदा और उत्पादक आधार के क्षरण की दर उसकी संचयन दर से अधिक हो चुकी है। कुल मिलाकर इस प्रकार के विश्लेषण यही दिखाते हैं कि वर्तमान वैश्विक उपभोग स्तर धारणीय नहीं है। अतः अर्थव्यवस्था की संवृद्धि दरों को धारणीय बनाए रखने वाले विकास पथ की प्राप्ति के लिए स्थानिक एवं वैश्विक संरोधों का ध्यान रखते हुए उपयुक्त कदम उठाने होंगे। इस संदर्भ में हमें धारणीयता की संकल्पना और उसकी प्राप्ति के लिए उपयुक्त दशाओं को भली प्रकार समझना होगा। विभिन्न विषयों के जानकारों ने धारणीयता की अपने अपने ढंग से व्याख्याएं की हैं, फिर पर मोटे तौर पर सारा संवाद धारणीयता के अर्थ और व्याख्या में अर्थशास्त्रियों के विचार के अधिक निकट प्रतीत होता है। हम निम्न पक्षों पर ध्यान देते हुए धारणीयता विषयक रचनाओं का सार यहां प्रस्तुत करेंगे :

- धारणीय विकास की विभिन्न व्याख्याएँ,
- धारणीय विकास का मापन,
- धारणीय विकास व्यवहार में, और तत्संबंधी नीतिगत चुनौतियां।

13.2 सैद्धांतिक संरचना (रूपरेखा)

अर्थतंत्र को निरंतर उत्पादन के लिए संगठनबद्ध रखने का विचार नया नहीं है। वान्यिकी एक मत्स्य पालन में कभी से प्राप्ति के धारणीय स्तरों को लेकर चिन्ताएं विद्यमान रही हैं – अर्थात् लकड़ी की कटाई और मछलियों को पकड़ने की दरों और उनके जैव भंडार की प्राकृतिक वृद्धि दरों के संतुलन बनाए रखना उनका मुख्य सरोकार रहा है। यदि संदर्भित संसाधनों के गत्यात्मक संवृद्धि वक्र का अच्छा ज्ञान हो (अर्थात् इनमें वृद्धि और कमी के क्रम किस प्रकार चलते हैं) तो धारणीय व्यवहार को अपनाना संभव हो सकता है।

भले ही अनेक संसाधन वृक्षों एवं मछलियों की भांति पुनः नवीकृत हो जाते हों फिर भी अर्थव्यवस्था केवल नवीकरणीय साधनों पर निर्भर नहीं रहती (अतः धारणीयता का एक अर्थ यह भी होगा कि गैर-नवीकरणीय संसाधनों के मौलिक भण्डार के दुर्लभ हो जाने से पूर्व ही उनके स्थानापन्नों का विकास कर लेना चाहिए। इसका यह भी अर्थ है कि

संसाधन प्रयोग के पर्या प्रभावों को पृथ्वी की उस धारण क्षमता तक ही सीमित रखना चाहिए जो इन प्रभावों को आत्मसात् करने में समर्थ हों। इस संदर्भ में धारणीय विकास के विचार के बहु-विषयी आयामों पर ध्यान देना महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

13.2.1 धारणीय विकास का बहु-विषयी स्वरूप

धारणीय विकास की संकल्पना मूलरूप से ही बहुविषयी है। इस अवधारणा की शब्दावली केवल पर्यासंसाधनों के ह्रास से संबंधित आर्थिक आशंकाओं से विकसित नहीं हुई – वस्तुतः सोलो ने अंतरपीढ़ी समता या न्याय का प्रश्न भी इसी के साथ जोड़ दिया है। दूसरे शब्दों में, केवल अर्थशास्त्र तक सीमित दृष्टिकोण को धारणीय विकास के सभी सरोकारों के साथ संपूर्ण दृष्टि से न्याय करने में सक्षम नहीं पाया गया। इसी संदर्भ में पर्यावरण और उसके विभिन्न भू-भौतिक उप-तन्त्रों के व्यवहार को समझना अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो गया है। अतः संसाधन उपभोग प्रक्रिया की संरचना की प्रकृति (आर्थिक संवृद्धि और विकास क्रम में) को समझ लेना आवश्यक है, ताकि धारणीय विकास के अनेक मापकों के विकास की प्रक्रिया को सटीक रूप से समझा जा सके। यह संरचनात्मक प्रकृति आर्थिक विकास में सहायक पर्यातंत्र के गैर-रैखिक, सुदृढ़ और अप्रत्यावर्ती आयामों के रूप में निरूपित होती है।

13.2.2 संरचनात्मक प्रत्यक्ष दर्शन

धारणीय विकास में निहित संरचनात्मक स्वरूप का प्रत्यक्ष दर्शन इसके गैर-रैखिक, अप्रत्यावर्ती और लचीलेपन के आयामों में होता है।

गैर-रैखिकता

हमारे ग्रह पृथ्वी पर अधिकांश घटनाक्रम (चाहे जनसंख्या की वृद्धि हो या चक्रवृद्धि दर पर ब्याज की) गैर-रैखिक व्यवहार दर्शाते हैं। पर्या परिवर्तन न तो बहुत धीमा होता है और न ही यह निरंतर चलता रहता है। विशेषकर जीवशास्त्रीय संवृद्धि क्रम तो निरंतर चलता रहता है किंतु जब पतन या विनाश का समय होता है तो वह अकस्मात ही हो पाता है। गैर-रैखिकता का एक अन्य उदाहरण विषाक्त आदानों के ग्रहण और उनके जीवधारियों एवं जीवाणुओं पर प्रभाव है।

यही नहीं, जब पर्यावरण के उतार-चढ़ाव होते हैं तो किसी जैविक प्रकार 'भेद-W' के स्वास्थ्य स्तर को ज्यामितिक औसत द्वारा ही दिखाया जाता है। दूसरे शब्दों में, यदि X_i, प्रत्येक पर्या तंत्र N में स्वस्थता का स्तर है तो औसत स्वस्थता स्तर होगा :

$$W = N\sqrt{\prod_{i=1}^{N} X_i \quad ..... \quad i = 1 \quad ......N}$$

पर्यातंत्रों में गैर-रैखिक व्यवहार की समझ उन तंत्रों को प्रभावित करने वाली विभिन्न नीतियों के गुणों और त्रुटियों को समझ पाने के लिए आवश्यक है। उदाहरणार्थ – (i) समय-समय पर होने वाले यादृच्छिक परिवर्तन नाटकीय व्युत्क्रमों को आरंभ कर पूरे तंत्र के विकास पथ को बदल सकते हैं; (ii) धीमे-धीमे चल रही प्रक्रियाएँ संकुलित रूप से स्थायी संबंधों के क्षेत्र को ध्वस्त कर तंत्र को एक नियंत्रक प्रक्रिया व्यवस्था से विचलित कर किसी अन्य में पहुँचा देती हैं। इसी प्रकार जब अम्लीय वर्षा के प्रभाव से एक वन्य पर्यातंत्र धीरे-धीरे ह्रासगत होता है तो सारा वन निश्चित रूप से धीमे-धीमे विनाश की ओर चला जाता है। यही नहीं, जीवाश्मीय ईंधन की खपत भले ही कुछ रैखिकता दर्शा रही हो इसका पर्या प्रदूषण पर प्रभाव प्रायः रैखिक नहीं रहता।

अप्रत्यावर्तनीयता

विभिन्न पर्यातंत्रों में संतुलन को प्रभावित करने वाली गतिविधियों का संचयी प्रभाव गैर-रैखिकताओं के साथ-साथ अप्रत्यावर्तनीयताओं (अर्थात् जैविक विविधता एवं प्रजातियों के विलोपन) को भी जन्म देता है। एक उदाहरण तो पर्यावरण की प्रदूषण को धारण एवं आत्मसात कर लेने की क्षमता ही है। इसमें गैर-रैखिकता एवं अप्रत्यावर्तनीयता समाहित

हैं। भले ही, हरितगृह गैसें (GHGs) तकनीकी दृष्टि से समय व्यतीत होने पर प्रत्यावर्तनीयता दर्शाती हों किंतु इन गैसों की गहनता में कमी आने से पूर्व पर्यातंत्र को अप्रत्यावर्तनीय हानि पहुँच चुकी होती है।

लचीलापन

यह किसी व्यवस्था की विसंगति सहन करने की क्षमता है – इसमें किसी सीमा तक अनुकूलन कर जाने का तत्त्व भी समाहित होता है। किंतु जब विसंगतियां या बाहरी प्रभावों की गहनता उस सहन सीमा से अधिक हो जाती हैं तो फिर यह लचीलापन समाप्त हो जाता है। यह सहन कर पाने की सीमाएं विभिन्न प्रजातियों एवं जीवाणुओं में अलग-अलग होती हैं और इसी कारण इनके लिए किसी सांझे गुणांक का प्रयोग नहीं हो पाता। यह लचीलेपन की हानि ही संपूर्ण व्यवस्था को एक कगार तक ले जाती है वह (उससे) व्युत्क्रम – अर्थात् किसी अन्य संतुलन की ओर अग्रसर हो जाता है। सीधे-सीधे तो लचीलेपन का अर्थ किसी व्यवस्था या तंत्र की व्याघात सहन कर उन्हें आत्मसात् कर लेने की क्षमता है। 'पर्यातंत्र लचीलापन' द्वारा मापित (यह मान) पर्या-धारणीयता का एक उपयोगी सूचक बन जाता है। यदि मानवीय गतिविधियों को धारणीय बने रहना है तो पर्यावरण व्यवस्था में लचीलापन भी बना रहना चाहिए। 'पर्या लचीलेपन' की किसी भी क्षति का अर्थ है वर्तमान एवं भावी पीढ़ियों के लिए सुलभ विकल्पों में अप्रत्यावर्तनीय बदलाव आ सकते हैं।

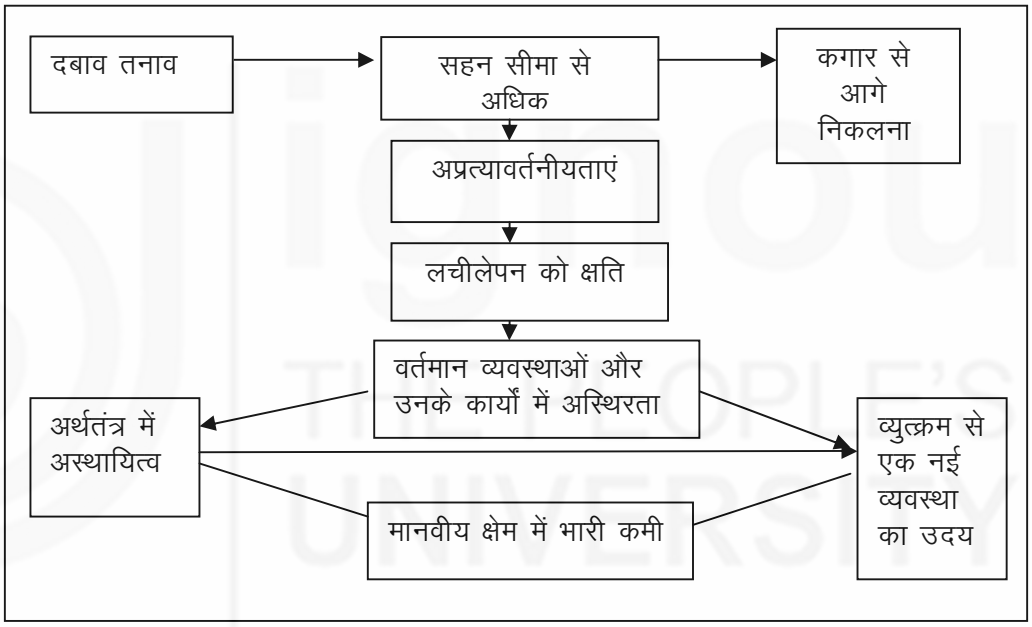

चित्र 1 : लचीलेपन और मानवीय क्षेम की परस्पर निर्भरता

स्रोत : राव, 2000

13.3 धारणीय विकास : परिभाषाएँ और व्याख्याएँ

बहुविषयी विशेषताओं के ही कारण यह भी स्पष्ट हो जाता है कि धारणीय विकास की कोई एक परिभाषा इसके सभी लक्षणों को संपूर्ण रूप से अभिव्यक्त नहीं कर पाएगी। परिभाषाओं के विशाल वितान से उनमें अंतर्निहित समानताएँ और विरोध भी स्पष्ट हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, ब्रंटलैंड आयोग रिपोर्ट (1987) ने कहा था : **जो विकास भावी पीढ़ियों की अपनी आवश्यकताओं को पूरा कर पाने क्षमता को कुंठित किए बिना वर्तमान की आवश्यकताओं को पूरा कर सकता हो वही धारणीय विकास होगा।** इसमें दो आवश्यक तत्त्वों पर आग्रह किया गया है : (i) विश्व के गरीबों के हितों की रक्षा; और (ii) प्रौद्योगिकीय एवं सामाजिक तंत्रों की पर्या संसाधनों के उस सीमा तक विदोहन रोक पाने में असमर्थता कि भावी पीढ़ियों की आवश्यकता पूर्ति कठिन हो जाए। इसी कारण आयोग ने प्रत्येक समाज के गरीब वर्ग एवं विश्वभर के गरीबों की

आवश्यकताओं की पहले पूर्ति करने को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की है। अतः धारणीय विकास का तर्काधार जीवन स्तर, विशेषकर समाज के सर्वाधिक अभावग्रस्त वर्गों के जीवन स्तर, के उन्नयन में निहित है – और वह भी इस प्रकार कि अप्रतिपूरित भावी लागतें न्यूनतम ही रहें।

हम बॉक्स 1 में धारणीय विकास की प्रायः उपलब्ध परिभाषाएँ रख रहे हैं। इन परिभाषाओं से 5 प्रकार की व्याख्याएँ मुख्य रूप से उभर कर आती हैं। ये इनके सत्व के क्रियान्वयन के लिए उपयुक्त नीतियों बनाने और लागू करने में उपयोगी हैं।

बॉक्स 1 : धारणीय विकास : कुछ परिभाषाएँ

धारणीयता की परिभाषा है समाज के प्रतिनिधि व्यक्ति की उपयोगिता में एक सहस्त्राब्दि तक गिरावट नहीं आना। (पेज्जे, 1992)

धारणीय गतिविधि, आर्थिक गतिविधि का वह स्तर है जो पर्या गुणवत्ता को अक्षुण्ण रहने दे, इसके लिए उपयुक्त नीतिगत उद्देश्य होगा प्राकृतिक संसाधनों की सेवा गुणवत्ता को बनाए रखते हुए आर्थिक विकास के निवल हितलाभों को अधिकतम करना। (बार्बीय और मार्कण्डया, 1990)

जो विकास भावी पीढ़ियों की अपनी आवश्यकताओं को पूरा कर पाने की क्षमता को कुंठित किए बिना वर्तमान की आवश्यकताओं को पूरा कर सकता हो वही धारणीय विकास होगा। – पर्यावरण और विकास पर विश्व आयोग (WCED1987)

(इसी को ब्रंटलैंड आयोग भी कहा जाता है)

धारणीय विकास की एक वैकल्पिक संकल्पना प्राकृतिक पूँजी परिसंपदाओं पर केंद्रित है और सुझाती है कि यह परिसंपदाएँ समय व्यतीत होने के साथ-साथ कम नहीं होनी चाहिए। पर्सी आदि (1989)

जैविक भौतिक सीमाओं के बावजूद भविष्य में अनंत काल तक बनी रह सकने वाली अर्थव्यवस्था ही धारणीय है। डैली (2005)

हम अब इन परिभाषाओं से स्पष्ट होने वाली पाँच प्रकार की व्याख्याओं पर विचार करेंगे।

1. धारणीय अवस्था वह है जिसमें समय के साथ–साथ उपयोगिता में ह्रास नहीं आता।

व्याख्या की इसी परंपरागत शैली का प्रयोग रॉबर्ट एम सोलो ने किया था और इसी के आधार पर रॉल्स के नीतिशास्त्र को उचित ठहराया था जिसके अनुसार ''अंतरपीढ़ी समता'' (अर्थात् सभी भावी पीढ़ियों में प्रतिव्यक्ति उपयोगिता का स्तर समान रहे) की कसौटी पर खरी उतरने वाली सामाजिक व्यवस्था ही धारणीय होती है। किंतु आने वाले समय की प्रतिव्यक्ति उपभोग की उपयोगिता को काटा रहित रूप में स्थिर रखने की अनिवार्य एवं पर्याप्त शर्तों की व्युत्पत्ति एक कठिन कार्य ही है। अतः जॉन हार्टविक का सुझाव मान अर्थशास्त्री उपभोग के स्थिर स्तर को ही धारणीयता मान रहे हैं। अभी कुछ समय से स्थिर उपयोगिता और स्थिर उपभोग की संकल्पनाओं का सम्मिलित स्वरूप **सोलो-हार्टविक कसौटी** के नाम से सामने आया है। किंतु इस कसौटी की भी गंभीर आलोचना हुई है कि इसमें न तो न्यूनतम आवश्यक उपभोग की बात हुई है और न ही यह बताया गया है ह्रास रहित प्रारंभिक उपभोग का स्तर कितना होना चाहिए? एक समझौते के रूप में मान लिया जाता है कि वर्तमान उपभोग स्तर न्यूनतम ही है और इनमें कोई कटौती सहन नहीं होगी – अतः इस स्तर को बनाए रखने वाला अर्थतंत्र धारणीय होगा। यह भी एक विप्रयासी व्याख्या मानी गई है। (पर्मेन आदि, 1999) और इसी कारण अन्य अनेक व्याख्याएँ करने की प्ररेणा जागृत हुई है।

2. **एक धारणीय व्यवस्था वह है जो इस प्रकार संसाधन प्रबंधन करती है कि भविष्य में उत्पादन के अवसर बने रहें।**

यहाँ धारणीयता को उत्पादन-उपभोग की क्षमताएँ भविष्य में भी बनाए रखने के रूप में परिभाषित किया गया है। अर्थ है कि किसी भी समय बिंदु पर उत्पादक क्षमता प्रयोग के लिए उपलब्ध उत्पादक (पूँजीगत) परिसंपदाओं के भण्डार पर निर्भर होती है। यहां प्रयुक्त शब्द 'पूँजी' बहुत ही महत्त्वपूर्ण और विस्तृत वितान युक्त है। इसमें पूँजी के चारों प्रकार भेद, अर्थात् प्रकृति (वन एवं मत्स्य), भौतिक (संयंत्र, यंत्रादि), मानवीय (कौशल, ज्ञान) और बौद्धिक (अंतर्निहित से स्तर कौशल एवं ज्ञान आदि) सम्मिलित हैं। इस परिभाषा के अनुसार मानव निर्मित पूँजी को भौतिक, मानवीय एवं बौद्धिक पूँजी के योग के रूप में दर्शाया गया है। अतः समस्त पर्यातंत्र के उत्पादन सामर्थ्य को एक सरल उत्पादन फलन $Q = f(L, K_N, K_H)$ द्वारा दिखाया जा सकता है जहाँ Q = पर्यातंत्र की उत्पादन क्षमता, L= श्रम या मानवीय प्रयास, K_N= प्राकृतिक पूँजी का भण्डार और K_H= मानव निर्मित पूँजी। अतः अर्थतंत्र की उत्पादन क्षमता उस समय तक अक्षुण्ण रहेगी जब तक कि समय के साथ-साथ सम्मिलित पूँजी भण्डार अक्षुण्ण रहता है।

3. **वही अवस्था धारणीय है जिसमें समय के साथ-साथ प्राकृतिक पूँजी भण्डार अक्षुण्ण रहता है।**

इस व्याख्या में अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता की धारणीयता के लिए प्राकृतिक पूँजी को अक्षुण्ण बनाए रखना एक अनिवार्य शर्त है। दूसरे शब्दों में, यहां प्राकृतिक संपदा को उत्पादन के लिए अनिवार्य माना जाता है और उसके स्थान पर कोई अन्य पूँजी घटक प्रयोग नहीं हो सकता। निर्बल और सबल धारणीयता के बीच अभी तक चल रहे विवाद के कारण इस व्याख्या को भी सीमित माना जाता है (देखें आगे 13.5)।

4. **वह व्यवस्था धारणीय है जिसमें संसाधन प्रबंधन इस प्रकार होता हो कि प्राकृतिक संसाधनों की उत्पत्ति धारणीय हो।**

यह व्याख्या कुछ प्राकृतिक संसाधनों की जैविक या पुनःनवीकरणीय प्रकृति पर आधारित है। इसके अनुसार धारणीय उत्पत्ति वह स्थिर स्तर है जहां संसाधन भण्डार को इस प्रकार बनाए रखा जाता है कि उससे प्रयोज्य साधन या सेवा प्रवाह स्थिर स्तर पर बना रहे। किंतु यह व्याख्या भी सीमित है क्योंकि यह हमें नहीं बता पाती कि ऐसे प्राकृतिक संसाधनों का भण्डार या उनका प्रवाह जैविक पर्यातंत्र के विभिन्न तत्त्वों साधारण योग है अथवा भारित।

5. **एक धारणीय अवस्था वह है जो पर्यातंत्र की स्थायित्व और समयावधि के दौरान लचीलेपन की न्यूनतम शर्त को पूरा करती हो।**

यह व्याख्या पर्यातंत्र के प्रति पर्याविदों के दृष्टिकोण से उत्पन्न हुई है। इसके अनुसार वह व्यवस्था ही पर्या-धारणीय है जिसमें लचीलापन हो (कॉमन और पेरिंग्स 1992)। किंतु समस्या यह है कि हमें पहले से तो यह ज्ञान नहीं हो पाएगा कि भविष्य में संभव संक्षोमों की उपस्थिति में भी व्यवस्था लचीली बनी रह पाएगी – इसका निर्धारण तो किसी घटनाक्रम के समापन पर ही हो पाता है। चित्र 13.2 धारणीय विकास की संकल्पना के उपर्युक्त व्याख्याओं के घटकों के बीच अंतर्संबंधों को एक व्यवस्थित अभिव्यक्ति प्रदान कर रहा है।

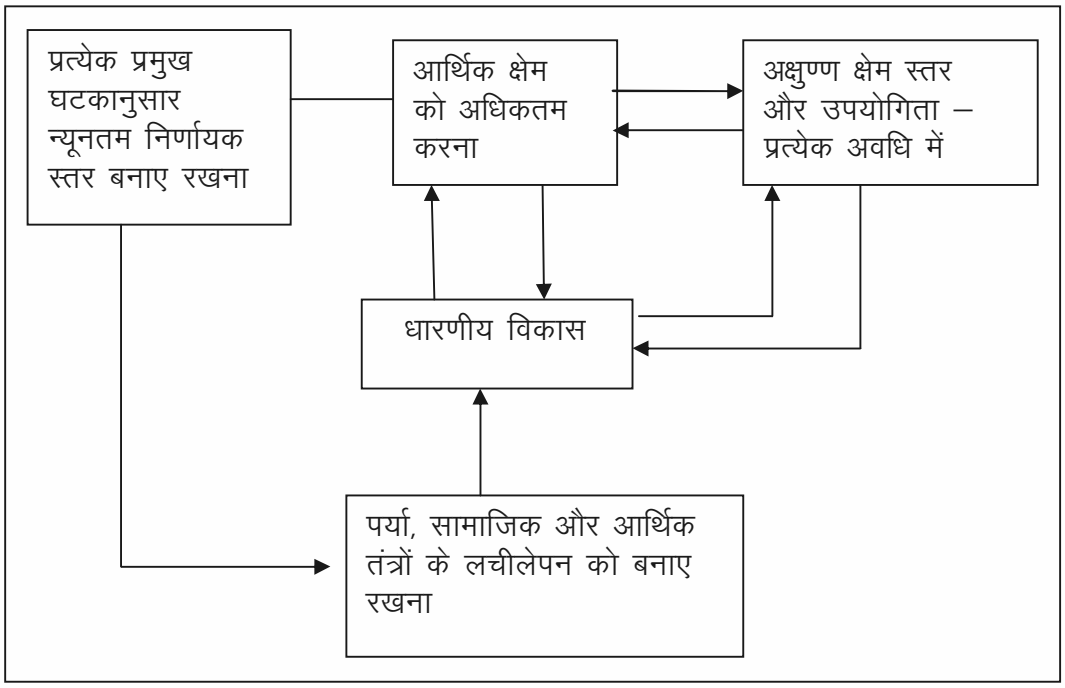

चित्र 13.2 : धारणीय विकास : एक व्यवस्थित अभिव्यक्ति

स्रोत : राव, 2002

बोध प्रश्न 1

नोट : सभी प्रश्नों के उत्तर लगभग 100 शब्दों में लिखें।

1) यह क्यों माना जाता है कि धारणीय विकास के प्रश्न पर संर्वांग संपूर्ण दृष्टि से विचार करने के लिए केवल आर्थिक सरोकारों तक सीमित रहना पर्याप्त नहीं है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) पृथ्वी की अधिकांश प्रक्रियाओं की गैर-रैखिकता (चाहे वह समाज शास्त्रिक हो या आर्थिक) को वास्तविक जीवन के उद्धरणों द्वारा समझाएँ।

.....

.....

.....

.....

.....

3) 'लचीलेपन' की परिभाषा कैसे की जाती है? किन दशाओं में यह समाप्त हो जाती है?

.....

.....

.....

.....

.....

4) ब्रंटलैंड आयोग रिपोर्ट द्वारा प्रदान की गई धारणीय विकास की परिभाषा के दो अनन्य घटक क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

5) धारणीय विकास की परिभाषा के लिए सोलो कसौटी और सोलो-हार्टविक कसौटी में भेद स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

6) आप पर्यातंत्र के उत्पादन सामर्थ्य को किस प्रकार परिभाषित करेंगे?

.....

.....

.....

.....

.....

13.4 धारणीय विकास के प्रति दृष्टिकोण

धारणीय विकास के प्रति एक सामान्यतः स्वीकार्य विचार है कि यह समाज की आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यातंत्रीय आवश्यकताओं से समन्वित रूप से संबद्ध है। इस विचार के अनुसार धारणीयता के इन तीन आधारिक आयामों पर पृथक-पृथक आग्रह नहीं होना चाहिए, इन पर तो इनकी समन्वित एवं परस्पर निर्भरतापूर्ण दृष्टि से ही कार्य होना चाहिए। अन्य की अवहेलना कर धारणीयता के केवल एक पक्ष की पूर्ति इन कारणों से अपर्याप्त रह जाती है : (i) तीनों आयाम स्वतंत्र रूप से भी निर्णायक रहते हैं; (ii) इनके बीच इतनी गहन पारस्परिकता है कि किस पर पहले ध्यान दें, के प्रश्न की चर्चा भी अनावश्यक समय की बर्बादी जैसी रहती है। इस दृष्टि से पर्या आर्थिक लेखांकन प्रणाली (SEEA) जो SNA की अपेक्षा अधिक सारपूर्ण है (देखें इकाई 14) भी केवल पर्यातंत्र एवं अर्थतंत्र विषयक जानकारी के संकलन तक सीमित रह जाती है और सामाजिक तंत्र को अछूता छोड़ देती है। दूसरे शब्दों में, पर्या आर्थिक लेखांकन प्रणाली पर्या एवं अर्थतंत्रों के विषय में तो बहुत कुछ बताती है किंतु तीनों आधारिक स्तंभों के

बीच पारस्परिकता, विशेषकर सामाजार्थिक एवं सामाजिक-पर्या अंतर्निभरता, के विषय में हमें कोई जानकारी नहीं दे पाती।

13.4.1 पूँजी दृष्टिकोण

धारणीय विकास के प्रति पूँजी दृष्टिकोण अर्थशास्त्रियों के विचारों के साथ जुड़ा है। यद्यपि यह विचार अर्थशास्त्र के सामान्य कार्यक्षेत्र से कहीं आगे निकल जाता है। यह अर्थशास्त्र से पूँजी की संकल्पना ग्रहण करता है, किंतु, इसमें ऐसे अनेक तत्त्व सम्मिलित कर लेता है जो मानवीय विकास की धारणीयता के लिए प्रासंगिक हैं। इस प्रक्रिया में अन्य क्षेत्रों की संकल्पनाओं को साथ लेकर पूँजी की अवधारणा में जोड़ लिया गया है। भले ही धारणीयता को लेकर अर्थविदों में काफी मतभेद भी हैं – पर वे एक बात पर अवश्य सहमत हैं कि यह आय की दीर्घ स्वीकृत संकल्पना से अवश्य संबंधित है। हिक्स (1946) ने यह कहा था कि ''आय वह अधिकतम परिमाण है जिसका एक व्यक्ति किसी अवधि में उपभोग कर लेता है और वह भी इस प्रकार कि अवधि के अंत पर भी वह उतना ही धनी बना रहे जितना प्रारंभ में था।'' एक व्यक्ति और एक देश के आर्थिक क्रियाकलापों में भारी अंतर तो सहज स्पष्ट है फिर भी आय की यह परिभाषा देश के लिए प्रयोग करते हुए हम इसमें कुछ संशोधन कर सकते हैं : आय वह समग्र परिमाण है जिसे एक देश अपने उस संसाधन भण्डार रूपी पूँजी को, जिससे वह आय प्राप्त करता है, क्षीण किए बिना व्यय कर सकता है। ध्यान रहे कि पूँजी में 'प्राकृतिक पूँजी', अर्थात् प्राकृतिक संसाधन भण्डार, भूमि और पर्यावरण ये तीनों घटक सम्मिलित हैं। ये तीनों दीर्घकालिक धारणीय विकास के लिए आवश्यक हैं और इन प्राकृतिक संसाधनों द्वारा संपादित तीनों प्रमुख कार्यों पर ध्यान देना अनिवार्य है। ये कार्य हैं : संसाधन कार्य, धारण (समाहन) कार्य और सेवा कार्य। संसाधन कार्य का अर्थ है – अर्थतंत्र में प्रयोग – अर्थात् वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के लिए साधनों (खनिज, लकड़ी, गहन सागर से मत्स्य आदि) का विदोहन। धारण-समाहन कार्य उत्पादन उपयोग द्वारा निःसृत अवांछित पदार्थों-तत्त्वों (गैस, तरल एवं ठोस निःसृण आदि) को अपने आप में समेट लेना। सेवा कार्य सभी जीवधारियों के लिए सांस लेने को वायु, पीने को जल आदि प्रदान करने की सेवाएं हैं। इसे हम 'जीवन धारण' कार्य भी कह सकते हैं। अतः यदि इन तीनों में से किसी एक कार्य की गुणवत्ता या उसके परिमाण में कोई कमी आती है तो जीव जगत की विविधता खतरे में पड़ जाती है। यही नहीं कुछ सेवा कार्य जीवन धारण के लिए आवश्यक नहीं होते हुए भी जीवन की गुणवत्ता में बहुत सुधार लगते हैं (सुंदर भूक्षेत्र, भ्रमण एवं विहार हेतु)। इन्हें हम सुविधाकारी कार्य कह सकते हैं और मानव जीवन की गुणवत्ता पर इनके सकारात्मक प्रभावों का मापन नहीं हो सकता। अतः पूँजी दृष्टिकोण के अनुसार विकास की दीर्घकालिक धारणीयता प्राकृतिक पूँजी को बनाए रखने पर निर्भर करती है। यदि किसी समय प्राकृतिक पूँजी भण्डार इतना कम हो जाए कि वह अपने उपर्युक्त कार्यों का सही रूप में संपादन करने में सफल नहीं रहे तो उन कार्यों के किसी भी संयोजन पर आधारित विकास धारणीय नहीं रह पाता।

13.4.2 पर्यावरणवादी दृष्टिकोण

पर्यावरणवादी दृष्टिकोण की मुख्य धारणा यह है कि अर्थतंत्र और समाजतंत्र वस्तुतः वैश्विक पर्यातंत्र के उपतंत्र ही हैं। इसीलिए आर्थिक-सामाजिक धारणीयता पर्यावरण की धारणीयता के अधीनस्थ ही रहती है। अतः इस दृष्टिकोण के अनुसार विकास अपने मूल अभिलक्षणों को अक्षुण्ण रखते हुए परिवर्तन के प्रति पर्यातंत्र की सकारात्मक क्रियाशीलता का ही नाम होगा। यहां पर्यातंत्र की बाह्य व्युत्क्रमों एवं परिवर्तनों के प्रति नम्यता (लचीलापन) वह क्षमता है जो धारणीय रहनी चाहिए। अब कुछ समय से इस चिन्तन धारा में यह विचार प्रबल होता जा रहा है कि धारणीयता के लिए अनिवार्य लचीलेपन को बनाए रखने के लिए पर्यातंत्रों के स्वास्थ्य का संरक्षण एवं संवर्धन किया जाना चाहिए।

धारणीय विकास के प्रति ''पर्यातंत्र स्वास्थ्य'' का विचार मोटे तौर पर परिभाषित श्रेणियों में मापन के प्रश्नों की ओर इंगित करता है। पहला प्रश्न तो मानवीय गतिविधियों

(सामग्री एवं ऊर्जा विदोहन, प्रदूषण निःसर्जन, स्थान अधिग्रहण और पर्या उत्पादिता आदि) द्वारा पर्यातंत्र पर डाले गए भार या दबाव का है। ये दबाव प्रायः पर्यातंत्र के स्वास्थ्य को हानि पहुँचाते हैं – जो ह्रास ग्रस्त सेवा प्रवाह और/अथवा प्रबंध विकल्पों में कमी का रूप धारण कर लेती है। दूसरा मुद्दा पर्यातंत्र की इन मानवीय दबावों की ओर प्रतिक्रिया है। ये प्रतिक्रियाएं चार प्रकार की हो सकती हैं : (i) पर्यातंत्र की अवस्था या दशा के मापक-सूचक; (ii) पर्या-अवस्था में परिवर्तन के कारणों को दर्शाने वाले मापक-सूचक; (iii) ज्ञात दबावों के कारण पर्यातंत्र में संभावित परिवर्तनों के मापक; और (iv) आरोपित दबावों का सामना करने की पर्यातंत्र की क्षमता को सूचित करने वाले मापक।

13.5 धारणीयता

पर्या-अर्थशास्त्रियों में 'धारणीयता' अर्थ को लेकर गहन विचार मंथन चला है। बहस इस बात पर हो रही है कि प्राकृतिक पूँजी और विनिर्मित पूँजी के बीच प्रतिस्थापन संभव है या नहीं – यदि प्रतिस्थापन की अनुमति हो तो उसे निर्बल धारणीयता की कल्पना कहा जाता है और प्रतिस्थापन नहीं हो तो उसे सबल धारणीयता माना जाता है। ब्रेक्क (1997) के अनुसार, विकास निर्बल रूप में धारणीय होगा यदि विकासक्रम में एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी तक कोई ह्रास नहीं हो। धारणीय विकास का अंतर पीढ़ी समता से गहन संबंध है और इसी कारण क्षेम की ह्रासहीनता को संवृद्धि पर एक संरोध की भांति स्वीकार किया जाता है – यहां तक कि क्षेम में अस्थायी कमी भी विकास की धारणीयता पर प्रश्न उठा देती है। ब्रेक्क की परिभाषा निवल राष्ट्रीय उत्पाद (NNP), जिसे सकल राष्ट्रीय उत्पादन (GNP) में से मूल्य ह्रास या पूँजी उपभोग का प्रावधान घटाकर आंकलित करते हैं, की निरंतर वृद्धि की ओर इंगित करती है। सामान्यतः सकल राष्ट्रीय उत्पाद को अर्थव्यवस्था में हुए वस्तुओं और सेवाओं के सकल उत्पाद के समान माना जाता है, इसी कारण इसे दो उत्पादक कारक पूँजी एवं श्रम की प्रतिप्राप्तियों का योग भी मान लिया जाता है। इस प्रकार नव-क्लासिकी चिंतन में धारणीयता को मूल रूप से एक देश के पूँजी पत्रक समुच्च्य को स्थिर बनाए रखने की प्रबंधन विधि मान लिया जाता है। इसमें प्राकृतिक पूँजी समाहित है – किंतु मानव निर्मित पूँजी के साथ इसके प्रतिस्थापन को लेकर दो पृथक-पृथक विचार प्रचलित रहे हैं।

13.5.1 दुर्बल धारणीयता

धारणीयता के प्रति यह दृष्टिकोण मौद्रिक रूप में मापित, राष्ट्र को उपलब्ध सकल पूँजी भण्डार से निरंतर प्रति व्यक्ति आय के अबाधित सृजन की उस प्रक्रिया से संबंधित है जिसमें उक्त पूँजी भण्डार की रचना पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। दूसरे शब्दों में, पूँजी के विभिन्न स्वरूपों को परस्पर प्रतिस्थापनीय माना जाता है। इस प्रकार यदि प्राकृतिक संसाधनों के ह्रास की प्रतिपूर्ति अन्य प्रकार की पूँजी की परिवृद्धि (प्राकृतिक संसाधनों के प्रयोग पर प्राप्त रॉयल्टी का फैक्ट्री लगाने में प्रयोग) से हो जाता है तो दुर्बल धारणीयता की अवधारणा उसे सहज भाव से स्वीकार कर लेती है।

पर्सी और एटकिन्सन (1995) का दुर्बल धारणीयता सूचक सूत्र इस प्रकार था : $Z = S/y - dM/y - dN/y$ यहां $y = GNP$, S= राष्ट्रीय बचत, dM= मानव निर्मित पूँजी की ह्रास दर तथा dN= प्राकृतिक पूँजी की ह्रास दर। यदि $Z > 0$ तो अर्थव्यवस्था दुर्बल रूप से धारणीय होगी।

दुर्बल धारणीयता की निहित मान्यता कि बचत का विनिर्मित पूँजी या फिर मानवीय पूँजी में निवेश हो जाता है और ये दोनों प्राकृतिक पूँजी के लिए संपूर्ण रूप से प्रतिस्थापक होती हैं। यही नहीं, इनके स्तर या परिमाण का नहीं बल्कि परिवर्तनों का ही महत्त्व होता है। इस दुर्बल धारणीयता के चरम निहित प्रभावों का एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रशांत महासागर में बसा एक छोटा-सा द्वीप राष्ट्र नौरू है। वर्ष 1900 में नौरू के पास विश्व के समृद्धतम फॉस्फेट भण्डार थे। किंतु अगले 90 वर्षों में निरंतर फॉस्फेट खनन के बाद इस द्वीप का 80 प्रतिशत भाग पूर्णतः ध्वस्त दिखाई देता है। फॉस्फेट खनन से $ 1 बिलियन की वार्षिक आय के सहारे नौरू वासी दशकों तक उच्च प्रतिव्यक्ति आय को

भोग चुके हैं – क्योंकि वह खनन आय ट्रस्ट कोष में जमा होती थी, और उससे एक निश्चित आय निरंतर प्राप्त होती थी। यह आर्थिक धारणीयता का प्रमाण माना जाता था। किंतु अन्य कारकों के साथ ही एशियाई वित्तीय संकट से उन ट्रस्ट कोषों के समाप्त प्रायः हो जाने से नौरू के वासियों को एक अंधकारमय भविष्य का सामना करना पड़ रहा है। आज वह द्वीप जीवशास्त्रीय दृष्टि से गंभीर विपन्नताग्रस्त है। वह दुर्बल धारणीयता का एक प्रखर उदाहरण बन गया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि भले ही अल्पकाल में प्राकृतिक पूँजी का विनिर्मित पूँजी द्वारा प्रतिस्थापन लाभप्रद लगे, किंतु, दीर्घकाल में तो धारणीयता की सीमा से अधिक उच्च स्तर पर विनिर्मित पूँजी द्वारा यह प्रतिस्थान भीषण विनाश का कारण बन सकता है।

13.5.2 सबल धारणीयता

धारणीयता की सबल संकल्पना का आग्रह है पूँजी के सभी प्रकारों को स्वतंत्र रूप से अक्षुण्ण रखा जाना चाहिए। इस संकल्पना की निहित मान्यता है कि ये पूँजी के विभिन्न प्रकार परस्पर संपूरक हैं और इनके एक साथ उपलब्ध होने पर ही ये मूल्यवान सिद्ध होते हैं। लकड़ी की कटाई चिराई आदि में लगी मानवनिर्मित पूँजी तभी तक मूल्यवान या उपयोगी होगी जब तक कि काटने-चीरने के लिए लकड़ी उपलब्ध हो। इसीलिए सबल धारणीयता के पक्षधर आग्रह करते हैं कि प्राकृतिक और विनिर्मित पूँजी, दोनों के भण्डार अक्षुण्ण रखने पर ही आय का ह्रास विहीन प्रवाह संभव हो सकता है। मानवीय पूँजी, प्रौद्योगिकीय योग्यताओं, प्राकृतिक संसाधनों और पर्यावरण की गुणवत्ता को बनाएं रखने से ही सबल धारणीयता की प्राप्ति संभव हो पाती है। दूसरे शब्दों में, सबल धारणीयता के लिए जहां सकल पूँजी भण्डार को अक्षुण्ण रखना आवश्यक है वहीं प्राकृतिक पूँजी के भण्डार की ह्रासविहीनता उसके लिए एक पर्याप्त शर्त होती है। अतः किसी भी स्तर पर, सीमांत स्तर पर भी, प्राकृतिक पूँजी के ह्रास की किसी अन्य प्रकार की पूँजी से प्रतिपूर्ति हो जाना स्वीकार्य नहीं होता।

सबल धारणीयता की कसौटी के अनुसार प्रत्येक प्रकार की पूँजी के कुछ न्यूनतम भण्डार अवश्य स्वतंत्र रूप से अपने वास्तविक भौतिक और जीवशास्त्रिक स्वरूप में अक्षुण्ण रखने चाहिए। इस आग्रह की मुख्य अभिप्रेरणा का स्रोत यह स्वीकृति है कि प्राकृतिक संसाधन किसी भी प्रकार के आर्थिक उत्पादन में आवश्यक आदान होते हैं और इसी कारण प्राकृतिक पूँजी का पूरी तरह से भौतिक या मानवीय पूँजी द्वारा प्रतिस्थापन समग्र क्षेम स्तर को अधिकतम स्तर तक नहीं ले जा पाएगा। इसीलिए सबल धारणीयता पर्यातंत्र एवं पर्यासंसाधनों का योगदान निर्णायक मानती है क्योंकि इनसे या तो विशिष्ट आवश्यक सेवाएं प्राप्त होती हैं या इनके अ-प्रयोग मूल्यमान अप्रतिस्थापनीय होते हैं। ओजोन परत जीवन धारण के लिए अनिवार्य सेवा तथा कोरलरीफ को अप्रतिस्थापनीय अ-प्रयोग मूल्यमान का योगदान माना जा सकता है। अतः धारणीय विकास का निरूपण और मापन इस बात पर निर्भर करता है कि आप क्या प्राप्त करना अनिवार्य मानकर चलते हैं। जहां दुर्बल धारणीयता पूँजी के सकल भण्डार की ही चिन्ता करती है वहीं सबल धारणीयता की संकल्पना सकल पूँजी भण्डार एवं उसके घटक तत्त्वों की स्वतंत्र रूप से अक्षुण्णता पर भी विशेष ध्यान दिलाती है।

बोध प्रश्न 2

नोट : सभी प्रश्नों के उत्तर लगभग 100 शब्दों में लिखें।

1) पर्यावरणीय आर्थिक लेखांकन (SEEA) में क्या सीमाएं होती हैं?

.....

.....

.....

.....

2) प्राकृतिक पूँजी के तीन मुख्य घटक क्या होते हैं? प्राकृतिक पूँजी किन निर्णायक कार्यों का संपादन करती है?

3) धारणीय विकास के प्रति ''पर्यातंत्र स्वास्थ्य'' दृष्टिकोण में निहित मापन के मुद्दों में से चार प्रभाव मापक बताइए।

4) अंतर्पीढ़ी ह्रासहीन क्षेम को संवृद्धि पर एक संरोध क्यों माना जाता है?

5) धारणीयता की दो संकल्पनाओं, दुर्बल और सबल में मुख्य भेद क्या है?

6) पर्सी और एटकिन्सन ने दुर्बल धारणीयता को कैसे परिभाषित किया है?

.....

.....

7) सबल धारणीयता की आवश्यक और पर्याप्त शर्तें किस प्रकार निर्धारित की जाती हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

13.6 धारणीय विकास के सूचक

प्रायः आर्थिक प्रगति की व्याख्या मानवीय आर्थिक क्षेम में वृद्धि के रूप में की जाती है। संवृद्धि और प्रगति के बीच संबंध का अर्थ है कि हम अपनी प्रगति के स्तर को पहले से आगे ले जाना चाहते हैं। राष्ट्रीय आय लेखांकन पद्धति की भाषा में राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के स्तर पर प्रगति के सूचक सकल घरेलू उत्पाद (GNP) अथवा निवल घरेलू उत्पाद (NDP) को माना जा सकता है। अभी कुछ समय से प्राकृतिक संसाधनों के उपभोग/ ह्रास/पतन आदि को समाहित करने वाली हरित राष्ट्रीय लेखा पद्धति पर भी ध्यान दिया जा रहा है। हरित लेखे की मूल सर्वसमिका हरित निवल राष्ट्रीय उत्पाद (G-NNP) इस प्रकार है :

$$G\text{–}NNP = C + S - Detr\ K_m - DepK_N - Deg\ K_N$$

यहां C= उपभोग, S= बचत, Detr K_m= मानव निर्मित पूँजी का ह्रास, Dep K_N= प्राकृतिक पूँजी का ह्रास (कमी) और Deg K_N = प्राकृतिक पूँजी का पतन।

उपर्युक्त सर्वसमिका का अभिप्राय है G-NNP उपभोग के साथ बचतों को जोड़कर उसमें से समस्त पूँजी भण्डार में आई कमी/ह्रास को घटाने से प्राप्त होता है। जब सारी प्राकृतिक पूँजी प्रयुक्त हो जाती है तो NNP का मान G-NNP से अधिक हो जाता है।

13.6.1 धारणीय विकास आयोग (CSD) सूचक और सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्य (MDG)

वर्ष 1992 के संयुक्त राष्ट्र प्रायोजित पर्यावरण और विकास सम्मेलन (UNCED) ने स्वीकार किया कि कुछ सूचक विभिन्न देशों को धारणीय विकास के संबंध में सुविचारित निर्णय लेने में सहायक हो सकते हैं। इसके तत्त्वाधान में धारणीय विकास आयोग (CSD) ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयोग एवं सत्यापित सूचकों को सभी देशों को सहज सुलभ कराने का बीड़ा उठाया। इन सूचकों को CSD सूचकों का नाम दिया गया है और इनका संबंध तालिका 13.1 में दर्शाए गए आयामों से है।

तालिका 13.1 : CSD सूचकों के आयाम

• गरीबी • प्रशासन • स्वास्थ्य • शिक्षा • जनांकिकी	• प्राकृतिक आपदाएं • वातावरण • भूमि • महासागर, सागर एवं तट प्रदेश • शुद्ध जल भण्डार • जैविक विविधता	• आर्थिक विकास • वैश्विक आर्थिक भागीदारी/ सहयोग • उपभोग और उत्पादन के स्वरूप

स्रोत : संयुक्त राष्ट्र, 2007

धारणीय विकास के सूचकों के प्रथम प्रतिरूप की रचना को धारणीय विकास संभाग (DSD) और सांख्यिकी संभाग ने सांझे रूप से संयुक्त राष्ट्र आर्थिक एवं सामाजिक कार्य विभाग में विचार मंथन के लिए तैयार किया था। यही प्रारूप संयुक्त राष्ट्र, अन्य अंतर्राष्ट्रीय संगठनों (अंतःसरकारी, गैर-अंतःसरकारी) के बीच धारणीय विकास संभाग (DSD) के तत्त्वाधान में व्यापक विचार-विमर्श और सहमत का आधार बन गया। परिणाम 134 सूचकों के एक समूह के रूप में उभर कर आया। इन सूचकों के ऐच्छिक सत्यापन कार्य में 22 देशों ने 1996-99 की अवधि में प्रयास किए। अगले वर्षों, 1999 से 2000 में उस सत्यापन प्रक्रिया का मूल्यांकन कर उन सूचकों के समूह में कुछ सुधार/परिवर्तन किए गए। कुल मिलाकर देशों ने सत्यापन की प्रक्रिया सफल रहने की बात कही किंतु उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि मानवीय संसाधनों और नीति-समन्वय के पटल पर उन्हें बहुत-सी संस्थागत चुनौतियों का सामना करना पड़ा था। फिर तो सूचक आंकलन प्रयासों का राष्ट्रीय विकास नीतियों के साथ समन्वय उन्हें सफल बनाने की कसौटी बन गया। अधिकांश देशों को लगा कि CSD के सूचकों का प्रारंभिक समुच्च्य बहुत बड़ा था। अतः उस समुच्चय को परिवर्तित कर सूचकों की संख्या 58 कर दी गई और उन्हें नीति विषयक आयामों और विभागों में बांट दिया गया।

आगे चलकर 2005 में धारणीय विकास संभाग (DST) ने विभिन्न आयामों का पुनः वर्गीकरण कर उन्हें अधिक संगति प्रदान करने के ध्येय से इन सूचकों के विकास में प्रगति का पुनर्वीक्षण प्रारंभ किया। साथ ही CSD और MDG द्वारा निर्धारित सूचकों में तारतम्य की स्थापना भी की गई। नवीन पुनर्वीक्षित मुख्य CSD सूचकों की संख्या अब 50 रह गई है। ये मुख्य सूचक तीन कसौटियों का अनुपालन करते हैं। सबसे पहले तो इनमें वही मुद्दे सम्मिलित हैं जो अधिकांश देशों में धारणीय विकास की दृष्टि से उपयुक्त माने गए हैं। दूसरे, इनसे वह जानकारी मिल रही है जो किन्हीं अन्य सूचकों से नहीं मिल पाती। तीसरे इनके आंकलन में अधिकांश देश पहले से ही उपलब्ध या फिर उचित समय और लागत पर प्राप्य आंकड़ों के आधार कर सकते हैं। नए सूचक समुच्च्य के घटकों का सामाजिक-आर्थिक, पर्यावरणीय और संस्थागत, इन मुख्य स्तंभों में स्पष्ट रूप से वर्गीकरण नहीं किया गया है। ये परिवर्तन धारणीय विकास के बहुआयामी स्वरूप को तो स्पष्ट करते ही हैं, साथ ही इनमें समन्वित प्रयासों के महत्त्व पर आग्रह भी निहित है। इसी दृष्टि से एकाधिक आयामी संकल्पनाएं, गरीबी, प्राकृतिक जोखिम, सम्मिलित की गई हैं और उपभोग एवं उत्पादन के स्वरूप जैसी बहु-आयामी संकल्पनाओं पर और अधिक बल दिया गया है। वैश्विक आर्थिक भागीदारी और प्रशासन अन्य नए आयाम हैं। इनमें से भागीदारी के आयाम में व्यापार और विकास वित्तीयन से जुड़े अनेक नए सूचक हैं। अभी प्रशासन आयाम का पूरा विकास नहीं हो पाया है – इसमें केवल अपराध के सूचक ही सम्मिलित हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार्य और व्यवहार्य (मापनीय) अच्छे 'प्रशासन' सूचकों पर अभी बहुत कार्यविधि विषयक कार्य किया जाना बाकी है। यह ध्यान देना भी प्रासंगिक होगा कि पर्या धारणीयता सुनिश्चित करना सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्यों (MGD, बॉक्स-2) के आठ प्रमुख लक्ष्यों में से एक है।

कई सूचक प्रतिच्छादी हैं – फिर भी ध्यान रखें कि इन दो समुच्च्यों के उद्देश्य बहुत भिन्न हैं। जहां CSD सूचक राष्ट्रीय स्तर पर परिभाषित लक्ष्यों के लिए आधार स्तर और प्रगति का निरूपण करते हैं वहीं MDG अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर नियत लक्ष्यों की ओर प्रगति की समीक्षा करने में सहायक होंगे। CSD सूचक धारणीय विकास के सभी स्तंभों से जुड़े मुद्दों के बहुत विशाल वितान को अपनी रचना में समाहित किए हुए हैं। MDG सूचक तो कहीं अधिक विस्तृत धारणीय विकास कार्य सूची का एक उप-समुच्च्य हैं जिनका मुख्य आग्रह गरीबी-स्वास्थ्य अभिसंधि से जुड़ा हुआ है। जनांकिकी, प्राकृतिक जोखिम, प्रशासन

और समष्टि अर्थशास्त्र आदि ऐसे धारणीय विकास आयाम हैं जिन पर MDG सूचकों में कोई ध्यान नहीं दिया गया है।

बॉक्स 2 : सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्य (MDG)

1. गहन गरीबी का निवारण
2. सर्वसुलभ प्राथमिक शिक्षा
3. लैंगिक समता संवर्धन और नारी सशक्तीकरण
4. बाल मरणशीलता में कमी
5. प्रसूता स्वास्थ्य सुधार
6. HIV/AIDS, मलेरिया आदि रोगों की रोकथाम
7. पर्या धारणीयता सुनिश्चित करना
8. एक वैश्विक भागीदारी की स्थाना

स्रोत : संयुक्त राष्ट्र, 2007

13.6.2 लेखांकन रूपरेखा और समष्टि-स्तरीय सूचक

लेखांकन की रूपरेखा पर आधारित सूचक निर्माण प्रणाली कई स्तरों पर संगतिपूर्ण वर्गीकरणों और परिभाषाओं के अनुसार क्षेत्रकीय समाकलन संभव बनाती है। इसका श्रेष्ठतम उदाहरण तो संयुक्त राष्ट्र सांख्यिकी आयोग (UNSC) द्वारा निर्मित समेकित पर्या एवं आर्थिक लेखांकन प्रणाली (SEEA) है। इस प्रणाली SEEA ने सांझे आंकड़ा आधार की रचना के माध्यम से राष्ट्रीय लेखांकन विधि में पर्यावरण के आयामों को भी समाहित कर लिया है। हाँ, कई देशों द्वारा SEEA का प्रयोग प्रारंभ हो जाने के बाद भी यह अभी विकासशील पद्धति ही है – क्योंकि अभी तक इसमें धारणीयता के दो स्तंभों, सामाजिक एवं संस्थागत को स्थान नहीं मिल पाया है। इसी सरोकार की पूर्ति के लिए प्रणाली को विस्तृत कर इसमें मानवीय पूँजी को स्थान देने और इसे उन सामाजिक लेखांकन आव्यूहों (SAM) के साथ संयुक्त करने के प्रयास चल रहे हैं जिन्हें राष्ट्रीय लेखांकन से संगतिपूर्ण विधि से विकसित किया गया है। SEEA का क्रियान्वयन पूँजी की रूपरेखा और विषयवस्तु आधारित रूपरेखा में समाहित धारणीय विकास सूचकों को और परिमार्जित कर देगा। पूँजी की रूपरेखा के संदर्भ में SEEA परिकल्पित और अनुमानित आंकड़ों से प्रत्यक्षतः प्राप्त पूँजी के मापकों की ओर अग्रसर होना संभव बनाती है। विषयवस्तु संरचना में यदि विकास युक्तियों के मूल्यांकन और पर्यवेक्षण (देखभाल) के लिए सूचकों का प्रयोग किया जाना हो तो SEEA विशेष रूप से उपयोगी है। सूचकों की एक संगतिपूर्ण आंकड़ा आधार पर रचना करने, सारगर्भित क्षेत्रकीय एवं स्थानिक विभाजनों को स्वीकार करने से विशिष्ट लक्ष्यों युक्तियों में समाहित विशेष लक्ष्यों एवं अंतरआयामी/अंतर्क्षेत्रीय प्रभावों की भी समीक्षा हो सकती है।

समष्टिसूचक (जैसे कि पर्या पदचिन्ह, पर्याधारणीयता सूचक ESI) और पर्या निष्पादन सूचक (EPI) का लक्ष्य अर्थव्यवस्थाओं की जैविक-पर्याक्षमताओं का मापन है। उदाहरण के लिए, पर्या पदचिन्ह सूचक, जिसे मूलतः 1996 में वेकर्नेगल और रीस ने विकसित किया था, मानवीय संसाधन उपभोग एवं कचरा निसृजन का किसी भूक्षेत्र या जल संसाधन रूपी जीवशास्त्रिक उत्पादक इकाई के मापने से संबंधित करता है। ESI में 76 प्रकार के सूचना आधारों को समाहित किया गया है (ये प्राकृतिक संसाधन भण्डारों, पिछले एवं वर्तमान प्रदूषण स्तरों, पर्या प्रबंधन प्रयासों और एक समाज की अपने पर्या-. निष्पादन को सुधारने की क्षमता आदि की जानकारी एकत्र करते हैं) और उन्हें पहले 21 और अंततः केवल एक सूचक में निबद्ध कर दिया जाता है। EPI विधि संसाधन क्षय,

प्रदूषण, पर्या-प्रभाव और ऊर्जा दक्षता के 16 सूचकों को मिलाकर पर्या-निष्पादन पर नीति प्रभावों के मापन का एक सूचक तैयारी रकती है।

13.7 राष्ट्रीय विकास युक्तियों में सूचकों का प्रयोग

सूचकों का चयन मुख्यतः इस बात पर आधारित रहता है कि उनसे क्या काम लिया जाना है। प्रारंभ से ही CSD सूचकों का मुख्य ध्येय राष्ट्रीय स्तर पर नीति निर्माण में सहयोग देना रहा है। धारणीय विकास की ओर प्रगति के आंकलन के साथ-साथ अनेक देशों ने उन सूचकों को अपनी धारणीय विकास युक्तियों (NSDS) के निर्माण के लिए भी सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। मूल ध्येय के साथ-साथ धारणीय विकास के सूचकों के चयन के लिए अन्य अनेक कसौटियां भी हैं। प्रारंभ से ही CSD सूचक दिशा-निर्देशों और कार्यविधियों ने आग्रह किया है कि इस सूचकों को ये कार्य करने में भी सक्षम होना चाहिए :

- इनका वितान-प्रसार राष्ट्रीय हो;
- धारणीय विकास की ओर प्रगति के आंकलन में सार्थक हो;
- संख्या सीमित हो, किंतु भविष्य में परिवर्धन – परिमार्जन के मार्ग बंद नहीं हो;
- स्पष्ट, विवाद रहित और बोधगम्य हो;
- अवधारणा पटल पर त्रुटिहीन हो;
- यथासंभव इन पर अंतर्राष्ट्रीय सहमति भी हो;
- इन्हें विकसित करना देश की अपनी सरकार के वश में हो; और
- प्रज्ञात गुणवत्ता के लागत प्रभावी (न्यूनतम संभव लागत) के आंकड़ों पर आधारित हो।

प्रथम कसौटी सूचकों के राष्ट्रीय स्तर पर आंकलन के महत्त्व पर आग्रह करती है कि संख्या में सीमित रहते हुए भी ये सूचक इतने सारगर्भित हों कि धारणीय विकास की अवधारणा की बहुआयामी प्रकृति का कोई अंग इनसे अछूता नहीं रह जाए। यदि सूचकों की संख्या बहुत विशाल हो तो फिर परिणाम भी बहुत बिखरे हुए हो जाते हैं जिनकी व्याख्या सरल नहीं रहती। उदाहरण के लिए, प्रारंभ में CSD सूचकों की संख्या 134 थी किंतु विभिन्न देशों में उनके मापन सत्यापन की प्रक्रिया ने इस संख्या को काफी कम कर दिया। बृहत्तर समुच्चय में एक छोटे महत्त्वपूर्ण उप-समुच्च्य की पहचान ने धारणीय विकास सूचकों का प्रयोग आसान बना दिया है। सामान्यतः इनकी संख्या उद्देश्य पर ही निर्भर करती है – यदि सूचकों के उद्देश्य सीमित (संकीर्ण वितान वाले) हों तो सूचक संख्या भी कम रह जाती है।

अस्पष्टता संदर्भशील ही होती है – इसीलिए जब उद्देश्य स्पष्ट होंगे तो सूचक भी अधिक स्पष्टतापूर्ण या निर्विवाद होगा। उदाहरणार्थ निम्न खाद्य सुरक्षा वाले देश में कृषि योग्य भूमि में सिंचाई सुविधा का प्रसार एक सकारात्मक विकास होगा, किंतु यदि किसी देश में साहाय्यों के कारण अत्यधिक कृषि उत्पाद की समस्या विद्यमान हो तो यह सिंचित कृषि क्षेत्र वृद्धि एक नकारात्मक स्वरूप धारण कर लेगी। अतः राष्ट्रीय स्तर पर उक्त सूचकों के किन्हीं लक्ष्यों के स्तरों का स्वयं निर्धारण कर लेना इस प्रकार की अस्पष्टता से बचाव में सहायक हो सकता है। कई बार विभिन्न भाव-आयामों के अंतर्संबंध भी टकराव का कारण बन सकते हैं। उदाहरण, उच्च GDP सवृंद्धि प्रायः

आर्थिक विकास का एक सकारात्मक चिन्ह मानी जाती है, किन्तु इसके साथ उच्च ऊर्जा उपभोग, प्रकृति संसाधन विदोहन और पर्या संसाधनों पर विपरीत प्रभाव भी जुड़े रहते हैं। फिर भी अनेक मामलों में इसके कारण गरीबी निवारण में सहयोग भी मिलता है। अतः इन संभावित टकरावों को सूचक समुच्च्य की अस्पष्टता का चिन्ह नहीं मानना चाहिए। वस्तुतः ऐसे उदाहरण इसी बात पर पुनः आग्रह करते हैं कि सभी सूचकों की समीक्षा एक समेकित स्तर पर होनी चाहिए (किसी एक सूचक को पकड़ कर उसी पर आग्रह करना उचित नहीं होगा)।

अवधारणा स्तर पर सूचक सुदृढ़ होने चाहिए। किंतु अनेक नए विषय आयामों में सूचकों के लिए मांग उनके विकास से पहले ही पैदा हो जाती है। ऐसी दशा में सूचकों के आधार स्तर पर निर्णय कर कार्य प्रारंभ करना और धीरे-धीरे उसकी रचना को परिमार्जित कर अवधारणागत समृद्धि की ओर बढ़ना उचित रहता है। उस समय तक उक्त तदर्थ सूचक का प्रयोग करते समय ध्यान रखना चाहिए कि वह यथासंभव पर्याप्त प्रासंगिक जानकारी को ग्रहण करता रहे और परिणामों में कोई व्युत्क्रम पैदा न करे।

पिछले दशकों में भारी सुधारों के बाद भी आंकड़ों की उपलब्धता और विश्वस्तता की समस्या भी अनेक देशों में बनी हुई है। लागत प्रभाविता में वृद्धि के लिए प्रायः CSD सूचक उन्हीं आंकड़ों का प्रयोग करते है जिन्हें सामान्य रूप से राष्ट्रीय सांख्यिकी संगठन एकत्र करते हैं या फिर किन्हीं अंतर्राष्ट्रीय प्रक्रियाओं में एकत्र हो जाते हैं (जैसा कि MDG के संदर्भ में संयुक्त राष्ट्र के विभिन्न विशिष्ट संगठनों ने किया था)। बहुत से सूचक तो सीधे ही राष्ट्रीय लेखा आंकड़ों तथा इसके लिए SNA विधि को अपनाने की प्रगति से ही प्राप्त हो जाते हैं। उपयुक्त नीति हस्तक्षेप निर्धारित करने के लिए सूचकों के समन्वित विश्लेषण को और सुधारने के कार्य में SEEA मानकों का क्रियान्वयन बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

13.8 भारत में धारणीय विकास विषयक प्रयास

SNA विधि में देश के राष्ट्रीय लेखे में प्राकृतिक संसाधनों के योगदान को समाहित नहीं किया जाता – किंतु हरित लेखांकन विधि इस त्रुटि को दूर कर सकती है। घरेलू उत्पाद के पर्या समंजित अनुमान ऐसी विकास नीतियां अपनाने में सहायक रहते हैं जो आर्थिक संवृद्धि के क्रम में अतिशय प्राकृतिक संसाधन विदोहन से बचते हुए आय के स्तर की धारणीयता का संवर्धन करती है। GDP और पर्या समंजित GDP के अंतर संसाधन क्षय और पतन का परिमाण स्पष्ट करते हुए उपयुक्त नीतियां अपनाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण संकेत प्रदान करते हैं। भारत ने प्राकृतिक संसाधन लेखाकन (NRA) में अध्ययन कार्य प्रारंभ कर दिये हैं ताकि अंततः देश में हरित GDP का आंकलन किया जा सके। केंद्रीय सांख्यिकी संगठन (CSO) ऐसी विधि पर कार्य कर रहा है जिससे विभिन्न राज्यों में भूमि, जल, वायु और भूमिगत संपदाओं में निहित प्राकृतिक संसाधनों को व्यवस्थित रूप से राष्ट्रीय लेखांकन में स्थान दिया जा सके। हरित भारतीय राज्य न्यास (GIST) द्वारा हाल ही में सभी राज्यों के वार्षिक सकल राज्य घरेलू उत्पाद के आंकड़ों का ऊपर से नीचे की ओर समंजन करने वाले आर्थिक प्रतिमान निर्धारित करने के प्रयास प्रांरभ किए गए हैं। उक्त अध्ययन का लक्ष्य ''वास्तविक मूल्य वृद्धि'' का आंकलन है और आशा है कि यह राष्ट्रीय एवं राज्य संपदा के अभी तक अछूत रहे गए आयामों तथा उत्पादन की इस प्रकार समीक्षा करने के संगतिपूर्ण एवं निष्पक्ष मूल्यांकन मानकों का निर्धारण कर पायेगी जो नीति विश्लेषण में उपयोगी रहेंगे।

फिर भी अभी तक भारत में प्राकृतिक संसाधनों का राष्ट्रीय आय में लेखा करने के प्रयास धारणीय विकास की उपयुक्त नीतियां बनाने के लिए वांछित स्तर तक नहीं पहुँच पाए हैं। इसके लिए पर्या संसाधनों के मूल्यांकन की बेहतर तकनीकों की पहचान के लिए शोध-अन्वेषण को तीव्र करना होगा। इस संदर्भ में अधिक गंभीरता लाने के लिए केंद्र और राज्य सरकारों की भागीदारी आवश्यक है। पर्या लेखांकन पर भी आर्थिक लेखांकन जितना ही ध्यान दिया जाना चाहिए। यहां उन सूचकों का निर्माण उपयोगी होगा जो प्रत्येक प्राकृतिक संसाधन विशेष के ह्रास का मूल्यांकन सुझा सके।

बोध प्रश्न 3

नोट : नीचे दिये गए सभी प्रश्नों का उत्तर लगभग 100 शब्दों में दें।

1) इसके घटकों को स्पष्ट करते हुए हरित NNP सर्वसमिका बताएं।

.....

.....

.....

.....

.....

2) CSD और MDG सूचक मिलकर किस प्रकार नीति निर्धारण में सहायक होते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3) SEEA किस प्रकार धारणीय विकास के दो स्तंभों (सामाजिक, संस्थागत) के अपर्याप्त प्रतिनिधित्व की समस्या का निराकरण कर रहा है?

.....

.....

.....

.....

.....

4) ''समष्टि सूचक'' क्या है? कुछ उदाहरण दें।

.....

.....

.....

.....

5) CSD सूचकों से किन कसौटियों के अनुपालन की अपेक्षा की जाती है?

.....

.....

.....

.....

.....

6) नीति प्रयास प्रारंभ करने में हरित GDP किस प्रकार सहायक है?

.....

.....

.....

.....

.....

7) भारत में हरित GDP लेखा विकसित करने के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कौन-सी बड़ी पहल की गई है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

13.9 सारांश

इस इकाई में धारणीय विकास की संकल्पना के बहुविषयी एवं अंतरविषयी स्वरूप को अच्छी तरह से रेखांकित किया गया है। इस दृष्टि से यह इकाई धारणीय विकास की तीन मूल संरचनात्मक विशिष्टताओं, गैर-रैखिकता, नम्यता और अप्रत्यावर्तीयता के आधार पर विभिन्न परिभाषाओं की संभावित व्याख्याएं समझाती है। धारणीयता के मापन की दो मुख्य विधियां हैं : पूँजी विधि और पर्यावरण विधि। फिर धारणीयता की दुर्बल व्याख्या, अर्थात् समस्त पूँजी भण्डार को अक्षुण्ण रखते हुए उसके प्राकृतिक एवं मानव निर्मित घटकों में प्रतिस्थापन और सबल धारणीयता अथवा प्राकृतिक पूँजी के सभी घटकों के निश्चित मान को अक्षुण्ण रखने एवं प्रतिस्थापन की अनुमति नहीं देने के विचारों के बीच अंतर स्पष्ट किया गया है। विभिन्न देशों द्वारा स्वीकृत धारणीयता के दो प्रमुख सूचक समूहों – CSD सूचकों और MDG/MGP सूचकों तथा उनके सफल विकास एवं क्रियान्वयन में अभी भी विद्यमान चुनौतियों की चर्चा भी की गई है। कुशल प्रशासन के आयाम को सूचकों के आंकलन में समाहित करना तो इन चुनौतियों का एक विशेष उदाहरण है। अंत में भारत द्वारा राष्ट्रीय विकास युक्तियों में धारणीयता के सूचकों को समाहित करने के प्रयासों की समीक्षा द्वारा इस इकाई का समापन किया गया है।

13.10 शब्दावली

पर्यातंत्र का स्वास्थ्य : यह वाक्यांश मानव स्वास्थ्य की नकल करते हुए गढ़ा गया है। सरल शब्दों में यह पर्यातंत्र की परिवर्तनशील दशाओं के साथ समन्वय करने की क्षमता है।

पर्यापद्चिन्ह : यह मानवीय गतिविधियों का उस भू-क्षेत्र से मापन करता है जो उन उपमुक्त पदार्थों के उत्पादन तथा उन गतिविधियों द्वारा निःसृत कचरे का समाहन करने के लिए आवश्यक होता है। सरल शब्दों में, यह किसी जीवन-शैली के लिए आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं के लिए आवश्यक पर्यावरण का परिमाण है।

हिक्स की धारणीयता : यह समाज के सकल पूँजी भण्डार को अक्षुण्ण रखने को ही धारणीयता की कसौटी मानने वाली संकल्पना है।

हिक्स-हार्टविक-सोलो दुर्बल धारणीयता : पर्सी और एटकिन्सन (1995) द्वारा प्रस्तावित दुर्बल धारणीयता की यह संकल्पना सुझाती है कि $Z = S/Y - dM/Y - dN/Y$ जहां Z द्वारा एक धारणीयता का सूचक दर्शाया गया है तो Y= GNP, S= राष्ट्रीय बचत, dM= मानव निर्मित पूँजी की ह्रास दर तथा dN= प्राकृतिक पूँजी की ह्रास दर। यदि $Z > 0$ हो तो अर्थव्यवस्था को दुर्बल रूप से धारणीय माना जाता है।

SDGs : ये विचार MDGs के समांतर रूप से गढ़े गए हैं। ये पृथ्वी महासम्मेलन, रियो डी जनेरिये, 1992 में प्रस्तावित हुए थे और रियो + 20, 2012 में इन्हें बहुत मान के साथ अपनाया गया था। SDG की कार्यसूची में स्वच्छ वायु, जैविक विविधता, वैश्विक सार्वजनिक पदार्थों की स्थापना एवं संरक्षण (इस प्रकार पर्या परिवर्तन को न्यूनतम रखते हुए वित्तीय स्थिरता बनाए रखना) आदि सम्मिलित हैं – इन्हें समष्टि सूचकों द्वारा मापा जा सकता है। ये धारणीय विकास के ध्येय या लक्ष्य नहीं बल्कि उसकी पूर्व शर्तें हैं।

13.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Brekke, K. A. (1997), Hicksian income from resource extraction in an open economy, Land Economics, 516-527.
2. Daly, H.E. (2005), Economics in a Full World, Scientific American, pp 100-107.
3. Haripriya, G.S. (2004), Environmental Accounting, Centre of Excellence in Environmental Economics, Madras School of Economics, Dissemination Paper, No. 3.

4. India's Ecological Footprint (2008), CII- Sohrabji Godrej Green Business Centre, Publications, http://www.greenbusinesscentre.com/site/ciigbc/publications.

5. Pezzey, J. & Toman, M. A. (Eds.) (2002), The Economics of Sustainability. Ashgate/Dartmouth.

6. Pearce, D. (1993), Blueprint 3: Measuring Sustainable Development, The Sequel to Blueprint for a Green Economy, CSERGE, Earthscan Publications Ltd.

7. Rao P.K. (2000), Sustainable Development: Economics and Policy, Blackwell Publishers. Pillars of Sustainable Development Sustainable Development 2 4

8. UN, EC, IMF, OECD, World Bank (2003), Handbook of National Accounting Integrated Environmental and Economic Accounting.

9. UN (2007), Indicators of Sustainable Development: Guidelines and Methodologies.

13.12 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

नोट : सभी बोध प्रश्नों के उत्तर उनके सामने इंगित अनुच्छेद-अंशों को पढ़ने के बाद ही लिखें।

बोध प्रश्न 1

(1) 13.2.1 (2) 13.2.2 (3) 13.2.2 (4) 13.3 (5) 13.3

(6) 13.3 (7) 13.3

बोध प्रश्न 2

(1) 13.4 (2) 13.4.1 (3) 13.4.2 (4) 13.5 (5) 13.5.1 तथा 13.5.2 (6) 13.5.1 (7) 13.5.2

बोध प्रश्न 3

(1) 13.6 (2) 13.6.1 (3) 13.6.2 (4) 13.6.2 (5) 13.7

(6) 13.8 (7) 13.8

इकाई 14 हरित लेखांकन और पर्या-लागत-हितलाभ विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 राष्ट्रीय लेखांकन प्रणाली : सिद्धांत और व्यवहार

14.3 परंपरागत राष्ट्रीय आय लेखांकन में त्रुटियां

14.4 परंपरागत राष्ट्रीय आय लेखांकन में आवश्यक परिवर्तन

- 14.4.1 भौतिक लेखांकन
- 14.4.2 प्रदूषण व्यय लेखांकन
- 14.4.3 हरित सूचकों का विकास
- 14.4.4 एस.एन.ए. जैसी पद्धतियों के संवर्धन

14.5 पर्या लेखांकन की उपादेयता

14.6 पर्या-लागत-हितलाभ विश्लेषण (ECBA)

- 14.6.1 पर्या-लागत-हितलाभ विश्लेषण के प्रयोग
- 14.6.2 पर्यावरण का मूल्यांकन
- 14.6.3 पर्या-लागत-हितलाभ विश्लेषण की सीमाएं

14.7 सारांश

14.8 शब्दावली

14.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.10 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

14.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप कर सकेंगे :

- राष्ट्रीय आय लेखा पद्धति (SNA) की व्याख्या;
- परंपरागत राष्ट्रीय आय लेखा पद्धति की सीमाओं का वर्णन;
- परंपरागत राष्ट्रीय आय लेखा पद्धति में परिमार्जन की विधियों की चर्चा;
- पर्या लेखांकन की उपयोगिता का रेखांकन;
- पर्या-लागत-हितलाभ विश्लेषण (ECBA) विधियों का वर्णन; और
- ECBA की सीमाओं का स्पष्टीकरण।

14.1 प्रस्तावना

राष्ट्रीय लेखांकन अर्थव्यवस्था की दशा का निरूपण कर समष्टि विश्लेषण के लिए उपयोगी आंकड़ा आधार प्रस्तुत करता है। इस लेखा विधि द्वारा तैयार सकल घरेलू उत्पाद (GDP) और सकल अचल पूँजी निर्माण (GFCF) जैसे मान बहुत समय से आर्थिक प्रगति के मूल्यांकन और नीति निर्माण आदि के लिए सिफारिशों का आधार रहे हैं। किंतु लगभग दो दशकों से यह स्वीकार किया जा रहा है कि GDP/GNP जैसे मापकों में एक बड़ी त्रुटि है : इनमें पर्या संसाधनों के योगदान/आर्थिक संवृद्धि की प्रक्रिया में वायु, जल की गुणवत्ता के ह्रास और मृदा-खनिज़ों एवं प्राकृतिक तेल भण्डार आदि के क्षरण का आंकलन निहित नहीं रहता। स्वच्छ पर्यावरण की बढ़ती हुई मांग

और लोक नीतियों में संवृद्धि-पर्या समप्रत्ययन पर आग्रह के कारण पर्या संसाधनों की आपूर्ति और प्रयोग को राष्ट्रीय आय लेखांकन में सटीक रूप से समाहित करने की आवश्यकता प्रतीत हो रही है। हमने इकाई 2 में पढ़ा कि हमारा पर्यातंत्र कच्चे माल एवं सुविधाओं के स्रोत के साथ-साथ आर्थिक गतिविधियों द्वारा निःसृत कचरे का समाशोधक भी है। हरित लेखांकन का ध्येय पर्या योगदान को आय प्रवाह में जोड़ने के लिए इन सेवाओं के उपयुक्त परिमाण निर्धारण करना और प्राकृतिक संसाधनों या पूँजी में वृद्धि/क्षय को समस्त राष्ट्रीय पूँजी/परिसंपदा भण्डार में समाहित करना है। हरित संवृद्धि के लिए तो पर्या संसाधनों पर गहन प्रभाव वाले निवेश प्रकल्पों के मूल्यांकन के लिए सामाजिक दृष्टिकोण को स्वीकार करने वाली पर्या-लागत-हितलाभ विश्लेषण विधि को अपनाना ही उचित होगा। हमारी यह इकाई वर्तमान राष्ट्रीय आय लेखा पद्धति (SNA) की एक समीक्षा से प्रारंभ होती है और इसकी मुख्य त्रुटियां स्पष्ट करती हैं। इन त्रुटियों के निदान एवं सुधार की विधियों पर भी यही चर्चा की गई है।

14.2 राष्ट्रीय लेखा पद्धति : सिद्धांत और व्यवहार

राष्ट्रीय लेखांकन पद्धति आर्थिक गतिविधियों के मापन के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत अनुशंसाओं का मानक समुच्च्य है। अर्थव्यवस्था के निष्पादन के विश्लेषण-मूल्यांकन तथा समष्टि आर्थिक आंकड़ों की प्रस्तुति के लिए एक संपूर्ण संकल्पना एवं लेखा रूपरेखा प्रदान करना ही SNA का मुख्य ध्येय है (संयुक्त राष्ट्र सांख्यिकी प्रभाग)। इस SNA ने सकल घरेलू उत्पाद (GDP), निवल घरेलू उत्पाद (NDP), सकल अचल पूँजी निर्माण (GFCF), सकल बचत आदि के मान आंकलित करने के उन मापकों का निर्धारण किया है जिनका अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनुपालन होना चाहिए। इन SNA अनुशंसाओं में नवीनतम विधियों एवं वांछनीय व्यवहारों को स्थान प्रदान किया जाता है। उदाहरण के लिए, SNA 1947 तो केन्जीय अर्थशास्त्र के बड़े समष्टि समंकों, उपभोग, बचत, निवेश और राजकीय व्यय तक सीमित थे किंतु 1953, 1960, 1964 और 1968 में इनमें परिमार्जन-संशोधन किए गए। यही नहीं, 1993 और अभी 2008 में भी इन मानकों में बड़े परिवर्तन किए गए हैं। अब SNA राष्ट्रीय आय लेखे को तीन मुख्य खातों में बांटने का कार्य करता है – (i) चालू खाता, (ii) परिसंपदा (संकलन) खाता और (iii) विभिन्न क्षेत्रकों के तुलन पत्र (SNA, 1993, 2008)।

चालू खाता : इस खाते में वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन को रखा गया है। इनका सृजन, वितरण और आय का प्रयोग करना यहीं दर्शाया जाता है। इस खाते में GDP को देश की सीमाओं में संपन्न सभी आर्थिक गतिविधियों में हुई मूल्य वृद्धि और निवल अप्रत्यक्ष करों (अप्रत्यक्ष कर घटा साहाय्य) के योग द्वारा मापा जाता है। अतः यह एक ऐसी मूल वृद्धि सर्वसमिका है जिसे हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं :

सकल मूल्य वृद्धि = उत्पादन – मध्यवर्ती उपभोग + निवल अप्रत्यक्ष कर (14.1)

अथवा

निवल मूल्य वृद्धि = सकल मूल्य वृद्धि – अचल पूँजी का उपयोग (14.2)

इस उपर्युक्त विधि को उत्पादन विधि कहा जाता है। यह GDP मापन की तीन विधियों में से एक है। अन्य विधियों को 'आय विधि' तथा 'व्यय विधि' कहा जाता है। इन विधियों में GDP मापक सर्वसमिकाएँ इस प्रकार हैं :

GDP = कर्मचारियों की क्षतिपूर्ति + सकल कार्य अतिरेक + सकल मिश्रित आय + निवल अप्रत्यक्ष कर (14.3)

GDP = उपभोग + राजकीय व्यय + सकल पूँजी निर्माण + निवल निर्यात (14.4)

परिसंपदा खाता और तुलन पत्र

SNA ने 'परिसंपदा'' को किसी इकाई या इकाइयों के समूह के स्वामित्व की वे चीजें कह कर परिभाषित किया गया है जिनसे उनके स्वामी किसी अवधि में कुछ आर्थिक लाभ अर्जित कर सकते हैं (SNA, 2008)। ये परिसंपदाएं उत्पादित आर्थिक संपदाएं (या कृत्रिम अथवा संश्लिष्ट) हो सकती हैं या फिर इनका स्वरूप अनुत्पादित प्रकृति सृजित (खनिज भण्डार, भू-संपदा) भी हो सकता है। परिसंपदाओं की परिभाषा में वित्तीय और अचल संपदाएं (मशीनें, यंत्र, संरचनाएं, उत्पादित जैव संसाधन आदि) सम्मिलित हैं। SNA 2008 ने पांच वर्गों में प्राकृतिक संसाधनों का विभाजन किया है : (i) भूमि, (ii) वर्तमान प्रौद्योगिकीय ज्ञान के सहारे निकाले जा सकने योग्य खनिज और ऊर्जा भण्डार, (iii) अनुत्पादित जैव संसाधन, (iv) जल संसाधन, एवं (v) अन्य प्राकृतिक संसाधन (ध्वनि तरंग वितान आदि)। प्रभावी स्वामित्व अधिकार वाले सभी पर्या संसाधनों – अर्थात् भूमि, ईंधन, खनिज, बागान, इमारती लकड़ी, मवेशी एवं प्रजनन हेतु पशुधन, निजी बागान आदि सभी को SNA ने वर्गीकृत कर लिया है। दूसरी ओर आर्थिक विदोहन क्षमता से हीन, स्वामित्व व्यवस्था से मुक्त पर्या संसाधन, जल-महासागर आदि, प्रभावी नियंत्रणहीन सांझा संपदाएं और अभी तक अज्ञात खनिज भण्डारों को SNA में स्थान नहीं मिल पाया है। इन्हें SNA की परिधि से बाहर रखने का एक व्यावहारिक कारण भी है : इनके योगदान का मापन सहज नहीं होता।

SNA ने परिसंपदा या संचयों के चार खाते बताएं हैं : (i) पूँजी खाता; (ii) वित्तीय खाते; (iii) परिसंपदा भण्डार में परिवर्तन – इसे SNA ने परिसंपदा खातों में अन्य परिवर्तन बताया है, और (iv) पुनः मूल्यांकन खाता। आर्थिक परिसंपदाओं के उत्पादनों को SNA इन्हीं चार खातों में बांट कर दर्शाता है। इनमें से पहले दो खातों, पूँजी खाता और वित्तीय खाता परिसंपदाओं, दायित्वों और निवल मान में बचत और पूँजीगत अंतरणों के कारण आए अंतरों को दर्शाते हैं। वहां वित्तीय खाते में वित्तीय परिसंपदाओं और दायित्वों को दर्शाया जाता है तो पूँजी खाते में गैर वित्तीय परिसंपदाओं के लेन-देन दिखाए जाते हैं। खातों के दूसरे समूह में परिसंपदाओं के परिमाण में आए परिवर्तन और परिसंपदाओं के पुनःमूल्यन से आए परिवर्तनों का लेखा-जोखा होता है। यहां परिसंपदा खाते में परिमाण के अंतर उन बड़े परिवर्तनों को दिखाते हैं जिनसे उनके परिमाण और दायित्वों के मूल्यमान में भारी अंतर आ जाते हैं। पुनः मूल्यांकन खाता बाजार में संपदाओं की कीमतों में आए बदलाव के प्रभावों को दर्शाता है।

''परिसंपदा खाते में परिमाण परिवर्तन'' खाते में अत्याशित भीषण हानि का लेखा दिखाने के साथ-साथ नए संसाधन अन्वेषण, भूमिगत तेल, कोयला, प्राकृतिक गैस आदि के भण्डारों की पुनः समीक्षा आदि का ब्यौरा होता हैं ये अकृषित प्राकृतिक संसाधनों (मत्स्य भण्डार, वन संपदा) की प्राकृतिक वृद्धि प्राकृतिक संसाधनों की परिसंपदा सीमाओं में सम्मिलित होना – या उससे निष्कासन भी दिखाता है। उत्पादित/कृषित एवं अनुत्पादित संपदाओं के सांझे संतुलन स्तर SNA ने इस प्रकार दर्शाए हैं :

अंतिम भण्डार = प्रारंभिक भण्डार + सकल पूँजी निर्माण – अचल पूँजी की घिसावट

+ परिसंपदा परिमाण में अन्य परिवर्तन + परिसंपदा धारण से जुड़े लाभ/ हानि (14.5)

भारत में राष्ट्रीय लेखा और GDP, NDP, GFCF, CFC आदि के आंकड़े राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी (NAS) के नामक वार्षिक प्रकाशन में छापे जाते हैं। NAS में समय समय पर आधार वर्ष के परिवर्तन द्वारा कीमत स्तर को अधिक वस्तुपरक बनाने और नव उपलब्ध चरों के आंकड़ों को स्थान प्रदान करने का कार्य चलता रहता है। वर्ष 2010 में NAS को संशोधित कर 1993 और 2008 की SNA की अनुशंसाएं सम्मिलित की गईं थीं। साथ ही आधार वर्ष को भी 2004 पर अंतरित कर दिया गया था। आगे चलकर नया आधार वर्ष 2011-12 अपना लिया गया है। NAS के प्रचलित और संचयी खातों में अनेक महत्त्वपूर्ण पर्याविषयक विचारों को स्थान प्रदान किया गया है। उदाहरणः GDP के आंकड़ों में गोबर खाद, कुछ फसलों के कृषित परिसंपदा में प्राकृतिक वृद्धि, ईंधन लकड़ी, इमारती

एवं गैर-इमारती लकड़ी के वनों से विदोहन आदि को उत्पाद एवं कीमतों के आंकड़ों की सुलभता के आधार पर शामिल किया जा रहा है। इसी प्रकार सकल पूँजी निर्माण में परिवारों द्वारा पवन एवं जैव गैस ऊर्जा संयंत्रों में किया गया पूँजी व्यय सम्मिलित है। फिर भी पर्या सरोकारों से जुड़े अनेक चरों की जानकारी अभी NAS की परिधि से बाहर ही है। उदाहरण के लिए, अभी भी भू-पतन, प्राकृतिक आपदाओं के परिणाम, भू-उत्पादिता में ह्रास, भू-गुणवत्ता क्षरण आदि का आंकलन नहीं हो पा रहा। वनों के संदर्भ में अवन्यीकरण, जलीय वनस्पति क्षेत्र, जैविक विविधता आदि का भी आंकलन नहीं किया जा रहा। वातावरण की गुणवत्ता के विषय में भी अभी तक SO_2, CO_2 हवा में तैरते कणों (SPM), कार्बनमोनोऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड, ईंधन उपभोग और उपभोग और ओज़ोन परत का क्षरण करने वाले अनेक तत्त्वों का अभी भी लेखा-जोखा नहीं किया जा रहा। भूस्थल एवं भू-गर्भित जल की गुणवत्ता, जल प्रवाह में गाध जमने और उनके उपचार की लागतों पर भी अभी तक राष्ट्रीय लेखा चुप्पी साधे हुए हैं।

14.3 परंपरागत राष्ट्रीय आय लेखांकन में आवश्यक त्रुटियां

परंपरागत राष्ट्रीय आय लेखा मूलतः समष्टि अर्थशास्त्र के केन्जीय प्रतिमान को दर्शाता है जिसमें उपभोग, भौतिक पूँजी में निवेश, बचत और सरकारी व्यय पर ही ध्यान केंद्रित रहता है। यह पर्या एवं प्राकृतिक संसाधनों एवं उनसे सृजित प्रवाहों को प्रायः अनदेखा कर देता है। किंतु कोई भी अर्थव्यवस्था प्राकृतिक संसाधनों के अभाव में कोई भी कार्य नहीं कर सकती। अतः उनके योगदान को स्पष्ट करने और उनके अधारणीय विदोहन की बात उजागर करने के लिए राष्ट्रीय लेखांकन में उन्हें समुचित स्थान दिया जाना चाहिए। इसी संदर्भ में प्रभावी प्रबंधन के लिए प्राकृतिक संसाधनों को मापा जाना भी आवश्यक है।

हम इन सरोकारों की दृष्टि से SNA में आवश्यक प्रतीत हो रहे परिष्कारों पर तो भाग 14.4 में विस्तार से चर्चा करेंगे। यहां हम परंपरागत SNA की प्रमुख त्रुटियों की ओर ही आपका ध्यान आकर्षित कर रहे हैं।

1) प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने आय को भूमि, श्रम और पूँजी का प्रतिफल माना है। मानक नव-क्लासिकी उत्पाद फलन में तो श्रम और पूँजी को ही दो प्राथमिक उत्पादक साधन (कारक) माना गया है। इस प्रकार इस अवधारणा ने भूमि को पूँजी से अलग स्वरूप नहीं दिया था। अतः मूल्य वृद्धि के ये दो ही मूल स्रोत माने जाते हैं।

2) आर्थिक गतिविधियां प्राकृतिक संसाधनों को आदान के रूप में प्रयोग कर 'उत्पाद' सृजित करती है और इसी प्रक्रिया में कचरे/अवपदार्थ निःसृत होते हैं। परंपरागत SNA मानक पर्याकारकों/प्राकृतिक संसाधनों की इस भूमिका को स्पष्ट रूप से स्वीकार नहीं करते। इन्हें या तो मध्यवर्ती आदान मान लिया जाता है या कह देते हैं कि सटीक रूप से परिभाषित संपदा अधिकारों के अभाव में इनका बाजार में विनिमय नहीं होता – इसीलिए इनका मूल्यांकन नहीं हो पाता। उदाहरण के लिए, प्रकृति द्वारा प्रदत्त अवपदार्थ परिशोधन सेवा को एक आदान नहीं माना जाता – क्योंकि इसकी कोई बाजार कीमत सुलभ नहीं होती।

3) परंपरागत SNA प्राकृतिक संपदाओं को मानवनिर्मित परिसंपदाओं के समकक्ष नहीं मान पाता। इसी कारण GDP में प्राकृतिक पूँजी क्षरण का समंजन नहीं हो पाता – वस्तुतः मृदा, वन एवं खनिज संपदा का क्षरण यहां GDP की वृद्धि में परिलच्छित होने लगता है। उदाहरण के लिए, वनों की कटाई पर व्यय का सकारात्मक योगदान SNA में स्थान पा जाता है, किंतु इस प्रक्रिया में समाज पर थोपी गई वन संपदा की हानि की कोई चर्चा नहीं हो पाती। जैसे मशीनों में मूल्य ह्रास होता है वैसे ही मृदा की उर्वरता में भी ह्रास होता है। उर्वरताहीन भूमि की भावी आय योगदान क्षमता कम रह जाती है। परंपरागत SNA के NDP के अनुमान केवल मानव निर्मित परिसंपदाओं के ह्रास को अचल पूँजी के उपभोग (CFC) के रूप में

दर्शाते हैं। ये पर्या परिसंपदाओं के मूल्य ह्रास का आंकलन नहीं करते, क्योंकि, भूमि और खनिज भण्डारों जैसी अनुत्पादित परिसंपदाओं के CFC का अनुमान नहीं लगाया जाता।

4) परंपरागत GDP मापन में अमौद्रीकृत एवं बाजार से बाहर रही वस्तुओं/सेवाओं का भी अधोमूल्यन हो जाता है। उदाहरण के लिए, इमारती एवं गैर-इमारती वन उत्पाद तो GDP के भाग हैं किंतु वनों के बाढ़ नियंत्रण, कार्बन संवहन, मृदा क्षरण प्रतिरोध और सुविधा स्वरूपी योगदानों की कोई चर्चा नहीं की जाती – क्योंकि इन सेवाओं का बाजार में लेनदेन और मौद्रिक मूल्यांकन नहीं हो पाता। दूसरे शब्दों में GDP की परंपरागत आंकलन विधि बाजार में विनियमित वस्तुओं और सेवाओं के मूल्यांकन पर ही आग्रह करती है – इसमें अविनियमित वस्तुओं और सेवाओं पर ध्यान ही नहीं दिया जाता।

5) इन्हीं कारणों से भले ही वन आच्छादन घट रहा हो, GDP तो बढ़ती जाएगी क्योंकि वनों से इमारती लकड़ी के विदोहन से उसके बाजार मूल्य के GDP में सम्मिलित होने के कारण वह GDP तो बढ़ी हुई नज़र आती है। एक अन्य उदाहरण वायु प्रदूषण का है – इसमें वृद्धि के जन स्वस्थ्य पर विपरीत प्रभाव होते हैं – किंतु उसके परिणामस्वरूप चिकित्सा सेवाओं की मांग में वृद्धि होती है – अर्थात् उपभोग व्यय में वृद्धि होती है और वह GDP में वृद्धि के रूप में परिलच्छित होती है।

6) पर्या/प्राकृतिक परिसंपदाओं में परिवर्तन के कुछ वितरण प्रभाव भी होते हैं जिन्हें परंपरागत GDP गणना में अनदेखा कर दिया जाता है। उदाहरणार्थ संसाधनों के भण्डार में ह्रास के कारण उन प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर क्षेत्रों की गरीबी की स्थिति और गंभीर हो जाती है। इससे विकसित और अल्पविकसित क्षेत्रों में अंतराल और विस्तृत हो जाता है। गायब होते वन, वन्य जीवन और प्रदूषित वायु वर्तमान राष्ट्रीय आय मापन को प्रभावित नहीं कर पाती। प्राकृतिक संसाधनों पर ही निर्भर गरीब देश भी ऐसी राष्ट्रीय आय मापन विधियों का अनुसरण कर रहे हैं जिनमें उन्हीं संसाधनों की अनदेखी हो रही है। ऐसी लेखांकन विधि यही मानकर चलती है कि ये संसाधन तो अत्यंत प्रचुरता से उपलब्ध रहने वाले हैं। सही अर्थों में प्राकृतिक संसाधन वे परिसंपत्तियां हैं जो भले ही बाजार आधारित मूल्यांकन में विलुप्त रहें किंतु आर्थिक उत्पादिता में उनके बहुमुखी योगदान बने ही रहते हैं। प्राकृतिक संपदा के ह्रास एवं पतन के बावजूद राष्ट्रीय आय में वृद्धि का भ्रम इस परंपरागत राष्ट्रीय आय लेखाविधि द्वारा उत्पन्न किया जा रहा है। आय के इस प्रकार के मापक क्षेम स्तर में सटीक वृद्धि को अभिव्यक्त नहीं कर पाते क्योंकि इनसे यह पता नहीं चलता कि उक्त संवृद्धि प्रक्रिया पर्याधारणीय है या नहीं। धारणीय संवृद्धि के एक गलत मापन के निरंतर प्रयोग के पूरी अर्थव्यवस्था और पर्यावरण के लिए घातक परिणाम हो सकते हैं। इसीलिए संवृद्धि और पर्या पारस्परिकता के प्रभावों को समझने के लिए और उन्हें नीतिगत उपायों में सम्मिलित करने के लिए राष्ट्रीय आय के लेखांकन की पद्धति में ही पर्या लेखांकन को सम्मिलित अत्यंत आवश्यक हो गया है।

बोध प्रश्न 1

नोट : नीचे दिए गए प्रश्नों का उत्तर लगभग 100 शब्दों में लिखें।

1) SNA किन तीन मुख्य खातों में लेखे को विभाजित करता है? वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के मूल्य इनमें से किस खाते में रखे जाते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) राष्ट्रीय आय के मापन की तीन विधियां क्या हैं? प्रत्येक विधि में GDP आंकलन के समीकरण सूत्र बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

3) SNA में परिसंपदाओं की परिभाषा किस प्रकार होती है? इनके स्वरूप और घटक बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

4) SNA वर्गीकरण में प्रायः किस प्रकार की पर्या संपदाएं सम्मिलित हो जाती हैं? किन्हें यहां स्थान नहीं मिल पाता ।

.....

.....

.....

.....

.....

5) SNA में वर्गीकृत आर्थिक परिसंपदाओं के उत्पादों के चारों खाते बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

6) ''परिसंपदा परिमाण में परिवर्तन'' खाता क्या कार्य संपन्न करता है? उत्पादित और अनुत्पादित प्राकृतिक परिसंपदाओं को शामिल करते हुए (इस आधार पर) NAS में पूँजी भण्डार का अनुमान लगाने वाला समीकरण सूत्र स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

7) परंपरागत SNA पर्या मूल्य ह्रास का अनुमान क्यों नहीं लगाता?

.....

.....

.....

.....

.....

8) बाढ़ नियंत्रण और कार्बन संवहन जैसी वन सेवाओं का परंपरागत SNA में लेखा क्यों नहीं किया जाता?

.....

.....

.....

.....

.....

14.4 परंपरागत राष्ट्रीय आय लेखांकन में आवश्यक परिवर्तन

परंपरागत SNA विधि में त्रुटियों को दूर करने के लिए दो प्रकार के सुधार आवश्यक हो गए हैं। पहला तो पर्या पदार्थों और सेवाओं के अभी तक बाजार विनिमय से बाहर चल रहे घटकों की परिभाषा और उनका सटीक मूल्यांकन है। दूसरे सुधार का संबंध प्राकृतिक संसाधनों के भण्डार में परिवर्तन के मापन और मूल्यांकन से है। उदाहरण के लिए, वनों के संदर्भ में उनके गैर-बाजारीय हितलाभों को NDP में सम्मिलित किया जाना चाहिए। साथ ही इसे निवल राष्ट्रीय उत्पाद में एक परिसंपदा के रूप में वनों के मूल्यमान में आए परिवर्तन भी झलकना चाहिए। आज परंपरागत SNA को 'हरित' बनाने पर तो सहमति बन रही है किंतु इस कार्य को करने की विधियों का वितान ''पर्या परिसंपदाओं के भण्डार को सुरक्षित रखने'' से लेकर ''क्षेम पर पर्या परिवर्तनों के प्रभावों का आंकलन करने'' तक विस्तीर्ण है। हम इन विधियों को चार वर्गों में विभाजित कर सकते हैं : (i) भौतिक लेखांकन, (ii) प्रदूषण व्यय लेखांकन, (iii) हरित सूचकों का विकास, और (iv) इन दो विधियों से SNA पद्धति का विस्तार – समीकृत आर्थिक एवं पर्या लेखांकन SEEA तथा पर्या एवं प्राकृतिक संसाधन लेखांकन की रूपरेखा अथवा ENRAP।

14.4.1 भौतिक लेखांकन

इस दृष्टिकोण के अनुसार पर्यावरण की अवस्था पर भौतिक जानकारी का प्रयोग कर परंपरागत राष्ट्रीय लेखे की प्रतिपूर्ति की जानी चाहिए। उदाहरण, वनों के संदर्भ में इमारती लकड़ी के भण्डार, गहन वनों के अधीन क्षेत्रफल, खुले वन आदि के भौतिक सूचकों का हिसाब लगाया जा सकता है। वायु की गुणवत्ता के आंकलन में CO_2, SO_2, SPM, CO आदि के निःसरण के आंकड़ों पर विचार हो सकता है। जल की गुणवत्ता के विषय में जैविक ऑक्सीजन मांग – BOD, रासायनिक ऑक्सीजन मांग – COD, विलयित ऑक्सीजन, pH कारक आदि पर विचार किया जा सकता है। ऐसी जानकारी को परंपरागत आदान-उत्पाद आव्यूह में समाहित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, EUROSTAT ने NAMEA – पर्या खाता सहित राष्ट्रीय लेखांकन आव्यूह – की रचना की है। ऐसे उपस्कर अर्थतंत्र-पर्यातंत्र संबंध सूत्रों के विश्लेषण में उपयोगी हो सकते हैं।

इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कौन-सी आर्थिक गतिविधि किस निःसरण के लिए उत्तरदायी है।

प्रतिव्यक्ति CO_2 उत्सर्जन या अवपदार्थ निःसरण जैसे भौतिक सूचकों पर कुछ पर्याविदों ने आग्रह किया है किंतु इस विधि में कुछ त्रुटियां भी हैं। ये भौतिक सूचक पर्या लागतों एवं हितलाभों के मौद्रिक मान नहीं बता पाते। इसी विधि की एक अन्य त्रुटि को वनों के उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। वन का मापन उसमें काष्ठ भंडार, वनाधीन क्षेत्रफल, विभिन्न प्रकार के पशु एवं पादप धन की प्रजातियों द्वारा हो सकता है। किंतु ये मापन इकाइयाँ बहुत ही विविधापूर्ण है : काष्ठ का परिमाण घनमीटरों में, क्षेत्रफल हेक्टयरों में तो प्रजातियां तो संख्या में भी मापी जाती हैं। इन मापन इकाइयों की विसंगतियां ही उन्हें नीति निर्धारण कार्य के लिए अनुपयोगी बना देती हैं। उपयुक्त मापन इकाई का चयन किसी सुनिश्चित नीतिगत ध्येय पर निर्भर रहता है। उदाहरण, वनों का प्रयोग प्रजातीय या जैविक विविधता के संरक्षण या फिर काष्ठ उत्पादन प्रबंधन के लिए हो सकता है। असमान इकाइयों के प्रयोग के कारण भी यह विधि वन संपदा का सटीक निरूपण नहीं कर पाती। इसी कारण यह पर्या समस्या की गहनता या गंभीरता को भी स्पष्ट नहीं कर पाती। इस विधि के अनुपालन में बहुत ही विराट काम आंकड़ा आधार विकसित करने का भी होगा, क्योंकि यहां वायु, जल, वन आदि सभी प्राकृतिक एवं पर्यातंत्रीय संसाधनों की चर्चा हो रही है। इस कारण भी यह दृष्टिकोण विभिन्न परिसंपदाओं के आर्थिक एवं पर्यावरणीय महत्त्व को लेकर अधिक निष्कर्षों तक नहीं पहुँच पाता।

14.4.2 प्रदूषण व्यय लेखांकन

यह विधि प्रदूषण निवारण आदि पर व्यय के आंकड़ों की शृंखला विकसित करने पर आधारित है। संयुक्त राज्य और OECD देश इन आंकड़ों की शृंखलाएं बनाते आ रहे हैं। यह विधि उत्पादिता पर पर्यानीतियों के प्रभाव को दर्शा सकती है। किंतु इसकी कुछ सीमाएं भी हैं। इन आंकड़ों को परंपरागत राष्ट्रीय आय के लेखे में जोड़ा नहीं जाना चाहिए। ये तो पहले ही जोड़ी जा चुकी व्यय की वह मदें हैं जिन्हें अब पर्या व्यय के रूप में पुनः वर्गीकृत कर दिया गया है। यही नहीं, ऐसे व्यय वास्तविक अवसर लागतों को कहीं बढ़ा-चढ़ा सकते हैं – क्योंकि इनमें वे भौतिक लागतें भी हैं जिन्हें पहले ही उन पदार्थों/सामग्रियों के उत्पादक क्षेत्रों की मूल्यवृद्धियों में जोड़ा जा चुका है। अतः इनसे दोहरी गणना की संभावना में वृद्धि हो जाती है।

14.4.3 हरित सूचकों का विकास

पिछले कुछ वर्षों में पर्या एवं निःशुल्क रही सेवाओं को समाहित करने वाले कई सूचक विकसित किए गए हैं। नॉर्धास और टॉबिन का आर्थिक क्षेम मापक, MEW, 1922, GDP में निःशुल्क कार्य, विश्रामकाल, औद्योगीकरण की बाह्यताओं और पर्या क्षति का समंजन करता है। एक अन्य मापक पर्या समंजित NDP या सीधे ही EDP कहलाता है। संसाधन विदोहन में पर्या पतन और प्राकृतिक पूँजी संपदा का क्षरण होता है। किंतु पर्यागुणवत्ता के सुधार से प्राकृतिक पूँजी के मूल्य में वृद्धि होती है। इसीलिए EDP की प्राप्ति के लिए NDP में से ''प्राकृतिक पूँजी के मूल्य में निवल वार्षिक परिवर्तन'' का समंजन किया जाता है। इस प्रकार मानव निर्मित और प्राकृतिक पूँजी के क्षय/क्षरण के लिए GDP से समंजन हो जाता है – यही दोनों प्रकार की पूँजियों के साथ सम्यक व्यवहार है। किंतु इस विधि का आग्रह प्राकृतिक पूँजी के मूल्य ह्रास के मौद्रिक आंकलन पर रहता है। इससे तो भौतिक रूप से संसाधन क्षरण के वास्तविक मूल्यमान छिपे रह सकते हैं। उदाहरण के लिए, इमारती लकड़ी की बाजार कीमत वृद्धि के कारण उसके काष्ठ भण्डार में भौतिक रूप से आई कमी कहीं छिप जाती है।

धारणीय संवृद्धि के मापक के रूप में ''सर्वांग संपूर्ण धन'' की संकल्पना का भी प्रयोग हुआ है। यह अर्थव्यवस्था की समस्त पूँजी संपदाओं की सटीक अवसर लागत को अभिव्यक्त करने वाला ''छाया मूल्यमान'' है। यहाँ प्रयुक्त पूँजी संपदाओं की व्यापक परिभाषा में भौतिक पूँजी के साथ-साथ उसके मानवीय, प्राकृतिक और सामाजिक स्वरूप

भी सम्मिलित किए गए हैं। मानवीय पूँजी तो मानव में निहित रूप से समाहित ज्ञान, कौशल एवं स्वस्थता है – वहीं सामाजिक पूँजी से तात्पर्य दक्ष न्याय व्यवस्था, सुपरिभाषित संपदा अधिकार आदि से है। विश्व बैंक (2002 और 2011) ने विभिन्न देशों के सर्वांग संपूर्ण धन संपदा के अनुमान तैयार किए हैं। संयुक्त राष्ट्र विश्वविद्यालय के ''वैश्विक पर्या परिवर्तन पर अंतर्राष्ट्रीय मानवीय आयाम कार्यक्रम'' ने एक ''समाहक धन संपदा रिपोर्ट'' IWR, प्रत्येक दो वर्ष की अवधि पर प्रकाशित करना आरंभ किया है। भारत में हरित राष्ट्रीय लेखांकन पर सुझाव देने के लिए गठित विशेषज्ञ दल ने तो साफ-साफ शब्दों में हरित GDP के विचार को एक छलावा बताया है और कहा है कि आदर्श रूप से तो राष्ट्र की धन संपदा का मापन होना चाहिए। भारत में इस धन संपदा के मापन की दिशा में कार्य चल रहा है।

विश्व बैंक द्वारा प्रकाशित समंजित निवल बचत या सटीक बचत को धारणीय संवृद्धि का एक सूचक माना जाता है। इसे परंपरागत निवल राष्ट्रीय बचतों में से प्राकृतिक संसाधन क्षरण और प्रदूषकों द्वारा की गई क्षति के मान घटाकर आंकलित किया जाता है। साथ ही शिक्षा पर व्यय को मानवीय पूँजी का संवर्धक मानकर बचतों में जोड़ लिया जाता है। समंजित राष्ट्रीय लेखांकन या हरित लेखांकन को पर्या धारणीयता सूचक ESI आदि से बेहतर माना जाता है। यह ESI स्वयं 21 सूचकों के 5 वर्गों का सम्मिश्रण है – ये वर्ग हैं: पर्यातंत्र की दशा, मानवीय भेद्यता, संरक्षकत्त्व, जोखिम के स्तर और सामाजिक/संस्थागत क्षमता हरित लेखांकन की तुलना में यह ESI का विचार आर्थिक संवृद्धि प्रक्रिया की धारणीयता संबंधी प्रश्नों का उत्तर भी नहीं दे पाता। ऐसे ही कुछ अन्य सूचक हैं : पर्या पद्चिन्ह, जैविक क्षमता और पर्याऋण, मानवीय कुशल क्षेम सूचक आदि।

14.4.4 एस.एन.ए. जैसी पद्धतियों के संवर्धन

हरित लेखांकन पद्धति के विकास की एक दिशा केवल मूल्य ह्रास या प्रदूषण निवारण पर व्यय से कहीं आगे निकलकर पर्यातंत्र से सरोकार पड़ने वाले सभी क्षेत्रकों पर विचार करती है। यहां भी दो वर्ग हैं : एक पर्या एवं आर्थिक लेखांकन पद्धति SEEA है और दूसरा पर्यातांत्रिक और प्राकृतिक संसाधन लेखांकन व्यवस्था ENRAP है। दोनों में ही क्षेत्रक स्तरीय जानकारियों की आवश्यकता रहती है। हम यहां इन पर कुछ विस्तार से चर्चा कर रहे हैं।

पर्या एवं आर्थिक लेखांकन पद्धति (SEEA) : इसी विधि के तीन भाग है : केंद्रीय रूपरेखा, प्रयोगात्मक पर्यातंत्रीय खाता और संवर्धन एवं अनुप्रयोग। केंद्रीय रूपरेखा भौतिक रूप में मापित पर्या सूचनाओं को मौद्रिक रूप में व्यक्त आर्थिक जानकारियों के साथ जोड़ने का कार्य करती है। SEEA पर्यातंत्र के भौतिक इकाइयों में मापन और बाजार के नियमों के अनुसार उसके मूल्य के निर्धारण का कार्य करता है। SEEA के विस्तार-संवर्धन-अनुप्रयोग में वे विश्लेषण विधियां बताई गई हैं जो सिखाती हैं कि किस प्रकार से SEEA के आंकड़े नीति-निर्धारण में काम आ सकते हैं। SEEA की केंद्रीय रूपरेखा इन तीन प्रकार के महत्त्वपूर्ण मापन कार्यों को संपन्न करती है : (i) ऊर्जा और सामग्रियों के भौतिक प्रवाह, (ii) पर्या परिसंपदाओं से संबंधी स्टॉक और प्रवाह और (iii) पर्या संबंधित आर्थिक गतिविधियां और लेन-देन। ऊर्जा और सामग्रियों के भौतिक प्रवाहों में शामिल हैं : (क) पर्यावरण से अर्थतंत्र को प्रवाहित जल, खनिज, काष्ठ आदि प्राकृतिक आदान; (ख) निःसरण, ठोस कचरे आदि के रूप में अर्थतंत्र से पर्यावरण की ओर प्रवाह; (ग) अर्थव्यवस्था में उत्पाद प्रवाह। पर्यासंपदा संबंधी स्टॉक और प्रवाह उक्त पर्या संपदाओं के प्रयोग से प्राप्त प्रत्यक्ष भौतिक हितलाभों पर ध्यान केंद्रित करते हैं – इसमें गैर-भौतिक हितलाभों की गणना नहीं होती (जैसे कि जल शोधन, कार्बन संग्रहण एवं पर्यातंत्र से प्रवाहित अन्य हितलाभ)। विभिन्न परिसंपदाओं में निहित तत्त्वों पर पृथक-पृथक विचार नहीं किया जाता। उदाहरण के लिए, मृदा में विद्यमान पोषक तत्त्वों को अलग-अलग नहीं गिना-मापा जाता। पर्या संबंधित आर्थिक गतिविधियों में पर्या दबाव का निवारण करने वाले कार्य भी शामिल हैं – जैसे कि प्रदूषण निवारण व्यय, धारणीय

संसाधन प्रबंधन, आदि। कर, साहाय्य, अनुदान और भाड़ा आदि पर्या विनिमय भी यहीं दर्ज किए जाते हैं। SEEA का एक पृथक भाग ''पर्यावरण संरक्षण व्यय खाता'' EPEA है। केंद्रीय रूपरेखा का यह घटक अर्थव्यवस्था में उत्पादित पर्यासंरक्षण निमित्त सेवाओं तथा निवासी इकाइयों द्वारा इस संरक्षण के निमित्त किए गए व्यय का ब्यौरा दर्ज करता है।

SEEA की केंद्रीय रूपरेखा में अर्थव्यवस्था और पर्यातंत्र के स्टॉक और प्रवाहों की जानकारी देने के लिए अनेक तालिकाएं और खातों का प्रयोग किया जाता है। ये हैं : (i) प्राकृतिक आदानों, उत्पादों और अवशिष्टों के प्रवाहों के भौतिक और मौद्रिक आपूर्ति और प्रयोग दिखाने वाली तालिकाएं; (ii) प्रत्येक आंकलन काल के प्रारंभ में प्रत्येक पर्या संपदा के प्रारंभिक भण्डार और उक्त अवधि में हुए परिवर्तन को भौतिक एवं मौद्रिक रूप में दर्शाने वाले खाते; (iii) आर्थिक खातों की ऐसी शृंखला जो क्षय-लेखांकित आर्थिक समंक आग्रहपूर्वक दिखाती है; और (iv) पर्या कार्यों हेतु की गई आर्थिक गतिविधियों के व्यावहारिक लेन-देन तथा अन्य जानकारियां दर्ज करने वाले व्यवहार खाते। यह SEEA केंद्रीय रूपरेखा मोटे तौर पर SNA से संगतिपूर्ण है। दोनों पर्यासंपदाओं के मूल्यांकन के लिए बाजार में कीमत निर्धारण वाले नियमों का प्रयोग करते हैं। फिर भी दोनों में कुछ अंतर भी है। उदाहरण के लिए, SEEA में संकलन किए जा रहे खाते के विश्लेषणात्मक महत्त्व के अनुसार किसी भी उद्यम में अपने प्रयोजन हेतु हुए उत्पादन एवं वस्तुओं और सेवाओं के सभी प्रवाह दर्ज किए जाने पर आग्रह रहता है। यह परिवार द्वारा अपने प्रयोग के लिए किए गए उत्पादन को भी दर्ज करने को बढ़ावा देता है। इसके विपरीत SNA विधि में तो वस्तुओं के अंतिम स्व-प्रयोग की बात होती है – केवल सह-उत्पादक उद्यमों के बीच प्रवाहों का लेखा रखा जाता है। दोनों पद्धतियां प्राकृतिक संसाधनों के क्षय के मूल्य का महत्त्व स्वीकार करती हैं। किंतु SNA प्राकृतिक संसाधन क्षय को परिसंपदा खाते में 'परिमाण में अन्य परिवर्तन' की मद में दर्शा दिया जाता है। इस प्रकार संसाधन विदोहन को अर्जित आय की लागत का स्पष्ट स्वरूप नहीं मिल पाता – हमें केवल साधन क्षय संतुलनकारी आंकड़े मिल पाते हैं। हाँ, कुल मिलाकर SEEA और SNA में परिसंपदाओं की परिधि मौद्रिक स्वरूप में समान प्रायः रहती है, SNA के अनुसार आर्थिक मूल्यवान परिसंपदाओं को ही SEEA में स्थान मिल पाता है। किंतु भौतिक स्वरूप में SEEA की इस केंद्रीय रूपरेखा की परिसंपदा सीमाएं बहुत विस्तृत हैं – इनमें आर्थिक कार्यों के लिए संसाधन एवं स्थान प्रदान करने वाले सभी प्राकृतिक साधन एवं भूक्षेत्र सम्मिलित रहते हैं। भौतिक दृष्टि से SEEA की रूपरेखा ''केवल आर्थिक दृष्टि से मूल्यवान परिसंपदाओं'' तक सीमित नहीं रह पाती। इसी प्रकार जहां SNA तो भूमि को प्राकृतिक संसाधनों का समुच्च्य माना जाता है। किंतु SEEA की केंद्रीय रूपरेखा में इसके स्थान प्रदान करने वाले आयाम को एक पृथक प्राकृतिक संसाधन माना जाता है। कुल मिलाकर SEEA विधि में परिसंपदा परिधि SNA की तुलना में बहुत अधिक विस्तृत है। इसका मुख्य कारण यह है कि इस दृष्टिकोण ने परिसंपदाओं के स्वामित्व की कसौटी में छूट देने के साथ-साथ पारिस्थितिकी जैसी प्रत्यक्ष रूप से आर्थिक हितलाभ प्रदान नहीं करने वाली परिसंपदाओं को भी अपने वितान में समेट लिया है। चित्र 14.1 SNA और SEEA के भेद का स्पष्टीकरण कर रहा है।

पर्यावरणीय एवं प्राकृतिक संसाधन लेखांकन प्रकल्प (ENRAP) अथवा पेस्किन रूपरेखा परंपरागत राष्ट्रीय लेखे से ही प्रारंभ होती है, किंतु यह SNA की अपेक्षा आर्थिक सिद्धांतों से अधिक संगतिपूर्ण है (जबकि SEEA आर्थिक सिद्धांतों की अपेक्षा SNA के अधिक निकट है)। ENRAP का मूल विचार यही है कि एक आर्थिक खाते में सभी आर्थिक आदानों और उत्पादों का लेखा-जोखा होना चाहिए। उनके 'आर्थिक' कहे जाने के लिए उनकी बाजार कीमतों का विद्यमान होना आवश्यक नहीं है। बस, वे इतने दुर्लभ अवश्य हों कि बाजार में विक्रय होने की दशा में उनकी कीमत शून्य नहीं हो पाए। प्राकृतिक पर्यातंत्र बाजार में नहीं बिकने वाले किंतु दुर्लभ आर्थिक आदानों का एक बड़ा स्रोत है। इसीलिए ENRAP विधि प्राकृतिक और पर्या पूँजी के गैर बाजार विक्रीत, किंतु दुर्लभ

आदान-उत्पाद-सेवाओं को परंपरागत लेखा प्रणाली में सम्मिलित करने का आग्रह करती है। मूलतः आर्थिक होते हुए भी तीन प्रकार के गैर-विक्रीत आदान-उत्पाद-सेवा वर्गों को परंपरागत लेखांकन से बाहर छोड़ दिया जाता है। ये हैं : (i) आदान सेवाएं (उदाहरण, कचरा निपटान सेवाएं); (ii) उत्पादन या पर्यागुणवत्ता सेवाएं (पुनः प्रयोजन और मनोरंजन सेवाएं); और (iii) नकारात्मक उत्पादन (प्रदूषण का सृजन)। ENRAP विधि इन गैर-विक्रीत सेवाओं को उन बाजार विक्रीत सेवाओं के साथ संलग्न कर देती है जो पहले ही राष्ट्रीय लेखे का अंग है। ऐसी अविक्रीत सेवाओं के मूल्यांकन के लिए छाया कीमतों का आंकलन कर लिया जाता है।

पर्या परिसंपदाएं (SEEA)

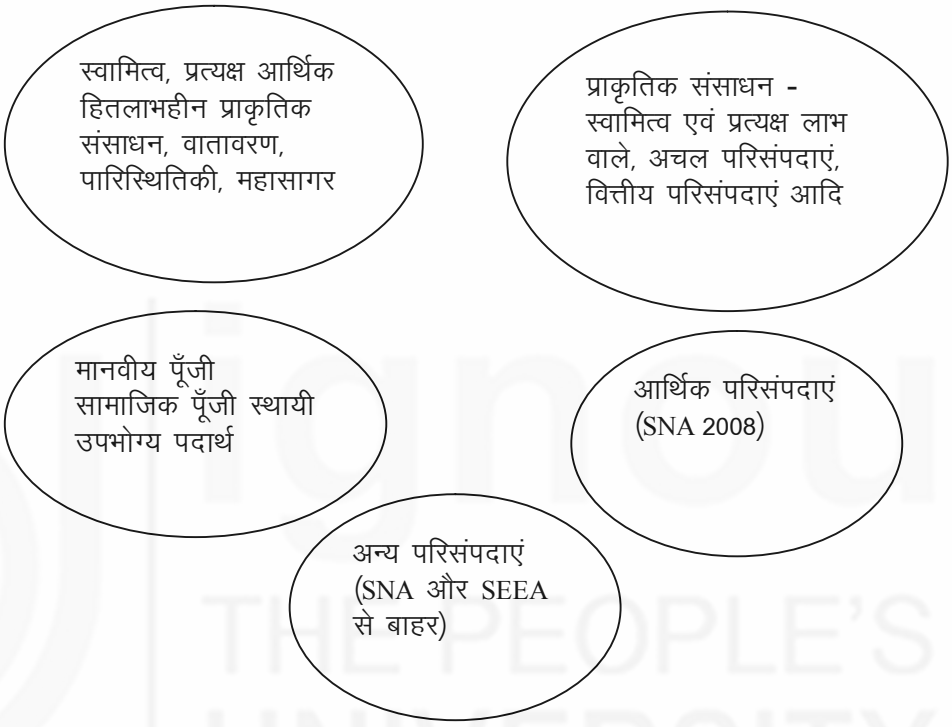

चित्र 14.1 : SNA और SEEA में 'परिसंपदाएं'

बोध प्रश्न 2

नोट : दिए गए प्रश्नों के उत्तर लगभग 100 शब्दों में लिखें।

1) परंपरागत राष्ट्रीय लेखांकन में सुधार के दो क्षेत्र कौन-से हैं? उदाहरण देकर स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) परंपरागत SNA विधि को 'हरित' बनाने के प्रयास किन दो दिशाओं में किए गए है? उन्हें किन चार समूहों में विभाजित किया जा सकता है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) भौतिक लेखांकन विधि में वास्तव में क्या किया जाता है? इसकी सीमाएं क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

4) परंपरागत SNA विधि को पर्या लेखांकन के लिए उपयोगी बनाने में ''प्रदूषण निवारण व्यय लेखांकन'' विधि की सीमाएं क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

5) पर्या समंजित NDA या EDP का अनुमान कैसे लगाते हैं? हरित लेखांकन के लिए EDP को प्रयोग करने में क्या समस्याएं आती हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

6) SEEA और SNA में मुख्य अंतर बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

7) ENRAP का आधारभूत विचार क्या है? यह ENRAP किस प्रकार SEEA से अलग स्वरूप धारण कर लेता है?

.....

.....

.....

.....

.....

14.5 पर्या लेखांकन की उपादेयता

हरित लेखांकन के प्राकृतिक संसाधन आधारित विकासशील अर्थव्यवस्था के लिए बहुत गंभीर नीतिगत निहितार्थ होते हैं – ये देश मुख्यतः कृषि, मत्स्य पालन और वन संपदा विदोहन पर निर्भर होते हैं। यदि यहां प्राकृतिक पूँजी के क्षरण और क्षय का हिसाब नहीं लगाया जाए तो राष्ट्रीय आय के अनुमान बहुत बढ़े-चढ़े दिखाई देने लगते हैं। हरित लेखाविधि ऐसी नीतियां निर्धारित करने के लिए एक रूपरेखा प्रदान कर देती है जो प्राकृतिक पूँजी को क्षति पहुँचाए बिना धारणीय आर्थिक संवृद्धि को प्रोत्साहित करती है और उस प्राकृतिक पूँजी के संवर्धन-संरक्षण के लिए निवेश के उपाय भी सुझाती है। इस कार्य में पर्या समंजित NDP (या EDP) विधि महत्त्वपूर्ण रहती है – यह प्राकृतिक पूँजी के क्षरण– मूल्य ह्रास के मौद्रिक अनुमान तैयार कर पर्या-संरक्षण की बेहतर नीतियां बनाने को प्रोत्साहन देती है। यदि संसाधन विदोहन से प्राप्त आगम का भौतिक और मानवीय पूँजी में निवेश तथा प्रदूषण निवारक नीतियां अपनाने पर व्यय किया जाए तो असमंजित GDP विधि में स्पष्ट हो रहे आर्थिक संवृद्धि के दुष्प्रभावों का समंजन संभव हो सकता है। इस संदर्भ में ''सर्वांगपूर्ण धन संपदा'' और ''समाहनकारी धन संपदा सूचक'' सहज ही यह स्पष्ट कर देते हैं कि देश की संपदा वस्तुतः निरंतर वृद्धिमान है या इसमें गिरावट आ रही है। ऐसे सूचक विभिन्न देशों के बीच तुलना में सहायक हैं – इनसे पता चल जाता है कि किन देशों की आर्थिक संवृद्धि प्रक्रिया धारणीय है और किंन्हें अपनी संवृद्धि को धारणीय बनाने के लिए अधिक सख्ती से पर्या-मानकों को लागू करने की आवश्यकता है।

एक उदाहरण हरित लेखांकन की उपादेयता स्पष्ट कर देता है। एक काल्पनिक अर्थव्यवस्था पर विचार करें। यहां प्राकृतिक संसाधनों का विदोहन विकास व्यय के वित्तीयन के लिए किया जाता है। वार्षिक GDP वृद्धि दर 8 प्रतिशत बताई गई है। अब मूल्य ह्रास में भौतिक पूँजी और संसाधन क्षरण (इमारती लकड़ी, पैट्रोलियम और मृदा) को शामिल कर लेते हैं। इनका हिसाब लगाने के बाद तो NDP संवृद्धि दर केवल 4 प्रतिशत रह जाती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार GDP अर्थव्यवस्था के पूँजी परिसंपदा आधार के क्षरण (प्राकृतिक पूँजी की हानि) को नज़रअंदाज करते हुए संवृद्धि के एक भ्रामक स्वरूप का चित्रांकन कर देती है। हरित लेखांकन करने पर नीति-निर्धारक इस भ्रम से मुक्त हो जाएंगे कि अर्थव्यवस्था बहुत अच्छा निष्पादन कर रही है और प्रदूषण निवारण व्यय एवं आगम के माध्यम से प्रतिपूरक संवृद्धि भी प्रारंभ हो सकती है।

14.6 पर्या-लागत-हितलाभ विश्लेषण (ECBA)

पर्या-लागत-हितलाभ विश्लेषण (ECBA) महत्त्वपूर्ण पर्या प्रभावों वाले निवेश प्रकल्पों और नीतियों के सामाजिक मूल्यांकन और समीक्षा से संबंधित है। पर्या संरक्षण संस्थाएं प्रायः ECBA द्वारा ही राजमार्ग निर्माण जैसे आर्थिक प्रकल्पों के पर्या प्रभावों की समीक्षा करती है। लागत हितलाभ विश्लेषण में मूलतः प्रकल्प के सभी प्रभावों-परिणामों की दीर्घकालिक सामाजिक समीक्षा हो जाती है। ECBA इसी विचार को प्रकल्प के पर्या प्रभावों तक विस्तृत कर देता है। ये पर्या प्रभाव प्रकल्प द्वारा सृजित सकारात्मक या नकारात्मक

बाह्यताओं के रूप में होते हैं। ECBA इन पर्या प्रभावों को मौद्रिक मान प्रदान करता है। स्वच्छ वायु जैसे पर्या पदार्थों/सेवाओं की बाज़ार में निर्धारित कीमतें नहीं होतीं – इसीलिए ECBA द्वारा उनके प्रबंधन के लिए आर्थिक मूल्यमानों का निर्धारण बहुत ही निर्णायक सिद्ध होता है।

एक सामान्य लागत हितलाभ विश्लेषण में व्यक्तियों के क्षेम या उपयोगिताओं की वृद्धि को हितलाभ तथा इन्हीं में आई गिरावट को 'लागत' माना जाता है। यदि सामाजिक हितलाभ का मान सामाजिक लागतों से अधिक हो तो प्रकल्प को स्वीकार कर लिया जाता है। हितलाभों का आंकलन समाज के विभिन्न वर्गों में उनके द्वारा उन लाभों हेतु ''भुगतान की तत्परता'' के योग से होता है – इसी प्रकार हानि या लागत का आंकलन किसी ''क्षतिपूर्ति भुगतान'' को स्वीकार करने की उत्सुकता के योग से हो जाता है। CBA में एक अवधि (प्रकल्प के जीवनकाल) भर में हितलाभों और लागतों का योग करना होता है – इसीलिए प्रत्येक हितलाभ प्रवाह और लागत प्रवाह का योग करने से पूर्व उनके घटकों का उपयुक्त स्तर पर 'काटा' करना आवश्यक है। उसी से हमें उनके वर्तमान मूल्य प्राप्त होते हैं। स्थिर कीमतों पर आंकलित ये मान मुद्रा स्फीति की समस्या का भी निवारण कर देते हैं। एक उदाहरण द्वारा ECBA का मूल विचार समझा जा सकता है। मान लें कि एक उजाड़ पड़े क्षेत्र के विकास पर विचार हो रहा है। विकास के लाभ का वर्तमान मूल्य *CO* है तथा काटा दर 'r' द्वारा दशाई गई है। यदि पर्या प्रभावों पर ध्यान नहीं दें तो प्रकल्प का निवल वर्तमान मूल्य NPV होगा :

$$NPV = \sum_{t=0}^{t-T} \frac{(BN_t - CO_t)}{(1+r)^t} - \sum_{0}^{T} \frac{BN_t}{(1+r)^t} - \sum_{0}^{T} \frac{CO_t}{(1+r)^t} = BN - CO \qquad (14.6)$$

पर्या प्रभावों का लेखा करने के बाद NPV होगा,

$$NPV = BN - CO - EC \qquad (14.7)$$

यहां *EC* पर्या लागत है। यह प्रकल्प के जीवनकाल में उसके पर्या प्रभावों का निवल मूल्य है। यदि ये *NPV* धनात्मक हो तो प्रकल्प को लागू करने की अनुमति होनी चाहिए, अर्थात् यदि

$$BN - CO > EC \qquad (14.8)$$

14.6.1 पर्या-लागत-हितलाभ विश्लेषण के प्रयोग

पर्या-लागत-हितलाभ विश्लेषण के दो स्वरूपों की पृथक-पृथक पहचान, उन्हें करने के समय के आधार पर हो सकती है। किसी प्रकल्प को लागू करने से पहले ''क्रियान्वयन पूर्व'' CBA द्वारा अभीष्ट विकल्प का चयन किया जाता है। प्रकल्प से वस्तुतः प्राप्त हुए निवल हितलाभों का आंकलन ''क्रियान्वयन पश्चात्'' प्रकार के CBA द्वारा होता है। आदर्श रूप से तो ''पूर्व'' प्रकार के CBA को अपनाया जाना चाहिए, क्योंकि एक बार पर्यातंत्र पर हो गए आघात की प्रतिपूर्ति सहज नहीं हो पाती।

ECBA में कई चरण या सोपान होते हैं : (i) समस्या की परिभाषा, अर्थात् हितलाभार्थियों, हानि वहनकर्त्ताओं की पहचान और प्रकल्प की अवधि की परिभाषा करना; (ii) प्रकल्प के भौतिक प्रभाव का स्पष्ट निरूपण; (iii) प्रभावों का मूल्य आंकना; (iv) लागत हितलाभ प्रवाहों का 'मितिकाटा' करना (एक उपयुक्त 'काटा' दर का चुनाव करना); निवल वर्तमान मूल्यमान की कसौटी का प्रयोग कर प्रकल्प का चयन करना; और (v) प्रकल्प में हुई गणनाओं का संवेदिता विश्लेषण (अर्थात् यह जांच करना कि वैकल्पिक काटा दरों से प्रकल्प के NPV पर किस प्रकार प्रभाव पड़ते हैं। नीति निर्माता प्रायः पहले सोपान पर विचार करते है जबकि भू-विज्ञान, पारिस्थितिकी एवं अन्य विज्ञान विशेषज्ञ द्वितीय सोपान से संबद्ध रहते हैं। अर्थशास्त्रियों की आवश्यकता तीसरे से छठे सोपानों के विश्लेषण में पड़ती है। एक ECBA की सफलता और विश्वस्तता तो प्रकल्प के पर्यातंत्र पर पड़े प्रभावों के मौद्रिक मूल्यांकन पर ही निर्भर रहती है। किसी प्रकल्प के वितरण प्रभाव एक अन्य क्षेत्र है जहां नीति निर्माता वर्ग को ही ध्यान देना पड़ता है।

14.6.2 पर्यावरण का मूल्यांकन

यदि किसी प्रकल्प से पर्या संपदा को बड़ा आघात होता है तो ECBA के लागत घटक में क्षरित हुई पर्या संपदा के ''कुल आर्थिक मूल्य'' (TEV) को शामिल किया जाना चाहिए। इसी प्रकार यदि किसी प्रकल्प से पर्यागुणवत्ता में सुधार हो तो ECBA के हितलाभ घटक में पर्यासंपदा की TEV में वृद्धि होनी चाहिए। मूलतः TEV पर्यावरण के प्रयोजन/गैर-प्रयोजन मूल्य को दर्शाती है। प्रयोजन मूल्य को हम पर्यावरण के प्रयोग से व्युत्पन्न 'लाभ' का नाम भी दे सकते हैं। कुछ प्राकृतिक संसाधनों का प्रत्यक्ष प्रयोग मूल्य होता है जैसे कि खनिज तेल, वन से लकड़ी, औषधीय पुष्पी पादप। मनोरंजनार्थ मत्स्य एवं पशु आखेट, तैराकी आदि भी ऐसे ही प्रयोजन मूल्य को दर्शाते हैं। प्रयोजन मूल्य अप्रत्यक्ष भी हो सकते हैं : व्यक्ति टेलीविज़न पर वन्य जीवन संबंधी कार्यक्रम देखकर भी आनंदित होते हैं। कचरा समाहन, जल शोधन आदि की पर्या सेवाएं अप्रत्यक्ष प्रयोजन मूल्य भी प्रदान करती हैं। उदाहरणः वन प्रत्यक्ष प्रयोग हेतु लकड़ी प्रदान करते हैं किंतु साथ ही साथ मृदा क्षरण रोध और कार्बन संग्रहण जैसी अप्रत्यक्ष सेवाएं भी प्रदान करते हैं।

गैर-प्रयोजन मूल्य को विकल्प मूल्य, उत्तराधिकार या विरासत मूल्य और अस्तित्व मूल्य के योगफल द्वारा दिखाया जाता है। विकल्प मूल्य की व्याख्या बीमा प्रीमियम से हो सकती है। किसी पर्या सेवा या चीज़ की भविष्य में प्राप्ति सुनिश्चित करने के लिए हम आज क्या कीमत चुकाने को तैयार हैं? अभी इस बात पर सहमति नहीं है कि विकल्प मूल्य को 'प्रयोजन'' वर्ग में रखा जाए या ''गैर-प्रयोजन'' में। विरासत मूल्य को भावी पीढ़ियों के लिए पर्यावरण को सुरक्षित छोड़कर जाने से प्राप्य आनन्द की अनुभूति या 'संतुष्टि' का मूल्य माना गया है। यहां भी मापन का आधार आज हम भावी पीढ़ी के लिए सुरक्षित पर्यावरण सुलभ बनाने के लिए हरित गृह गैर-उत्सर्जन कम करने हेतु जो कीमत चुकाने को तैयार हैं, उसी द्वारा किया जाता है। अस्तित्व मूल्य किसी पर्या सेवा या पदार्थ की मौजूदगी से मिली संतुष्टि का नाम है। उदाहरणः किसी को इसी बात से संतुष्टि हो सकती है कि विलुप्ति के कगार पर खड़ी कोई प्रजाति अभी समाप्त तो नहीं हुई है। भले ही वह उस प्रजाति के कभी दर्शन न कर पाए और लाभ भी न उठा पाए। फिर भी उसे विलुप्ति से बचाने को वह व्यक्ति महत्त्वपूर्ण मान सकता है।

विभिन्न रचनाओं में पर्या मूल्यांकन की तीन विधियां मिलती हैं – घोषित वरीयता विधि, उद्घाटित वरीयता विधि और हितलाभ अंतरण विधि। घोषित वरीयता विधि में व्यक्तियों को सीधे-सीधे किसी पर्या पदार्थ या सेवा का मौद्रिक मूल्य बताने के लिए कहा जाता है। उद्घाटित विधि में सीधे प्रश्नों द्वारा 'नहीं' बल्कि व्यक्तियों के व्यवहार के अवलोकन से उनके पर्यासेवा/पदार्थ के मूल्यांकन के विषय में निष्कर्ष निकाले जाते हैं। यह विधि बाजार आधारित या फिर प्रछन्न-प्रतिनिधि बाजार मूल्यों पर आधारित हो सकती है। बाजार आधारित से अभिप्राय बाजार में प्रत्यक्षतः अवलोकित कीमतों से है। उदाहरणः भले ही मृदा की उर्वरता की बाज़ार कीमत अज्ञात रहे किंतु मृदा को उत्पादन का कारक मानने वाले उत्पाद फलन से उसकी उर्वरकता में कमी के उत्पादन स्तर पर दुष्प्रभाव का आंकलन संभव हो जाता है। यह विधि उत्पादन हानि के रूप में मृदा उर्वरकता ह्रास का मूल्यांकन कर देती है। कुछ अविक्रित पर्या सेवाओं/वस्तुओं के अपने बाजार तो नहीं होते किंतु उनसे संबंधित चीजों के बाजार जरूर मिल जाते हैं। यहां व्यक्तियों की उन अविक्रीत पर्या पदार्थों के लिए अप्रत्यक्ष वरीयताओं का उद्घाटन हो जाता है। यात्रा लागत विधि और सुखवादी कीमत निर्धारण विधियां संबंधित पदार्थ बाजार द्वारा पर्या पदार्थों का मूल्यांकन कर सकती हैं। उदाहरण के लिए, किसी परिवार द्वारा मनोरंजन पार्क जाने पर खर्च करने की इच्छा को उसके उक्त पार्क की सेवा का मूल्य माना जा सकता है। इसी प्रकार, सुखवादी कीमत निर्धारण स्वच्छ वायु का मूल्यांकन इस आधार पर करता है कि व्यक्ति स्वच्छ वातावरण में निवास के लिए कितनी अधिक कीमत चुकाने को तैयार हैं। अन्य बातें समान होने पर स्वच्छ एवं हरे-भरे क्षेत्रों में भवन संपदाएं अधिक महंगी होंगी।

कई बार प्रत्यक्ष या फिर संबंधित पदार्थ बाजार आधारित विधियों का प्रयोग भी संभव नहीं रहता। यहां घोषित वरीयता विधि, जो गैर-बाजार मूल्यांकन प्रयोग करती है, उपयुक्त रह सकती है। लोगों से किसी प्रजाति विशेष के संरक्षण के निमित्त उनकी योगदान देने की तत्परता का प्रश्न किया जा सकता है। ऐसी विधि को नैमित्तिक या अनुषांगिक मूल्यांकन विधि (CVM) कहते हैं। यह घोषित वरीयता विधि बहुत प्रयोग हो रही है। यहां सीधे ही पूछा जाता है कि कौन पर्या पदार्थों के लिए कितनी कीमत चुकाने को तैयार है। इसी प्रकार यह भी पूछा जा सकता है कि किस राशि की क्षतिपूर्ति स्वीकार कर वे किसी पर्या हानि या क्षति की अनुमति दे सकते हैं। अन्य विधियां तो प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रयोजन मूल्य ही आंकलित करती हैं, CVM सिद्धांत रूप से पर्यावरण के प्रयोजन एवं गैर-प्रयोजन मूल्यों को सहज ही ग्रहण कर लेती है। किंतु CVM में भी अनुपयुक्त प्रश्नावली और प्रश्नकर्ता के अपने रूझान आदि के कारण त्रुटियां उत्पन्न हो सकती हैं। घोषित वरीयता विधि का एक अन्य स्वरूप ''चयन प्रतिमान'' है जहां न्यूनतम दो विकल्पों में एक को चुनने के लिए लोगों से कहा जाता है। इस समुच्च्य में कम-से-कम एक विकल्प वर्तमान अवस्था होनी चाहिए। लोगों से समुच्च्य के घटक विकल्पों का वरीयता क्रम निर्धारित करने के लिए कहा जाता है। यह विधि उन्हें सभी विकल्पों के बीच परस्पर तुलना करने का अवसर प्रदान करती है।

पर्या मूल्यांकन की एक विधि हितलाभ अंतरण विधि है। किन्हीं अन्य स्थानों पर, अन्य मुद्दों पर पहले ही हो चुके अध्ययन-विश्लेषणों से प्राप्त अनुमानों का यहां प्रयोग किया जाता है। फिर यह समान प्रायः पर्या परिवर्तनों के लिए मूल्य निर्धारित करती है। इस विधि का प्रयोग वहीं किया जाता है जहां नए सिरे से अध्ययन में समय और संसाधन (आर्थिक) अभाव बाधक हो रहे हों। पुराने अध्ययनों के निष्कर्षों के प्रयोग के लिए अतिरिक्त मान्यताएं बनानी पड़ती हैं– इसीलिए इस विधि को व्यक्तिनिष्ठ अधिक माना जाता है।

उपर्युक्त मूल्यांकन विधियां प्रयोग करने योग्य हैं और सभी का ECBA में व्यापक रूप से प्रयोग भी होता है। किंतु इनकी कुछ सीमाएं भी हैं। घोषित वरीयता विधि को व्यक्तिनिष्ठ कहते हैं परंतु उद्घाटित वरीयता विधि अधिक वस्तुपरक होते हुए भी केवल वहीं प्रयोग में आती है जहां व्यक्ति पर्या पदार्थों के लिए किसी-न-किसी रूप में भुगतान कर रहे हों, अन्यथा इस विधि के इस्तेमाल की संभावनाएं कम रह जाती हैं। यह विधि पर्या पदार्थों (विलोपन की आशंका झेल रही प्रजातियों के संरक्षण) के गैर-प्रयोजन मूल्यमान निर्धारण में तो पूरी तरह विफल हो जाती है। प्रायः घोषित वरीयता विधि का ही ECBA में अधिक प्रयोग हुआ है। हम CVM विधि से प्रयोजन मूल्य के साथ-साथ विकल्प, विरासत और अस्तित्व मूल्यों का भी आंकलन कर सकते हैं। किंतु यह विधि भी कल्पित कीमतें ही निर्धारित करती है – जो वास्तविक भुगतान तत्परता को नहीं दर्शा पाती। किंतु अन्य कोई विधि उपलब्ध नहीं होने के कारण ECBA में CVM तथा अन्य घोषित वरीयता विधियों का ही प्रयोग करना एक व्यावहारिक विवशता है।

14.6.3 पर्या-लागत-हितलाभ विश्लेषण की सीमाएं

कई बार पर्याक्षति प्रतिपूर्ति के माध्यम से बहाल नहीं हो पाती है। भौतिक पूँजी किसी भी प्रकार से ओज़ोन परत जैसी पर्यातंत्रीय सेवा का स्थान नहीं ले सकती। इस प्रकार की निर्णायक प्राकृतिक पूँजी के क्षय/क्षरण से तो मानव जाती का जीवन धारण भी संकट में पड़ सकता है। ECBA इस प्रकार की पराकाष्ठाओं और गैर-प्रतिस्थापनीय प्राकृतिक पूँजी संपदाओं को पूरी तरह नज़रअंदाज कर देता है। अतः किसी प्रकल्प के ECBA द्वारा सृजित उपयोगिता हानि के अनुमान उसे रोक पाने का आधार नहीं बन पाते। भले ही, वह प्रकल्प मानव मात्र के लिए संकट पैदा कर रहा हो। ऐसे प्रकल्पों का विश्लेषण लागत हितलाभ गणित से पृथक रूप से होना चाहिए। काटा दरों का चयन भी बहुत व्यक्तिनिष्ठ सिद्ध होता है। कई बार तो काटे की प्रक्रिया में भावी लागतें और हितलाभ इतने सामान्य से आंकड़े बनकर रह जाते हैं कि उनके आधार पर अंतरपीढ़ी समता के

विचार पर कुछ भी कह पाना संभव नहीं रहता। अतः काटा दरों का चुनाव भी बहुत सूझबूझ के साथ किया जाना चाहिए।

कुछ पर्या अर्थविद् आग्रह करते हैं कि पर्यावरण के मूल्यांकन में बहुत भ्रम और अनिश्चितता बनी रहती है। पर्यातंत्रीय सेवाओं के संदर्भ में तो यह बात विशेषकर अधिक सही लगती है। क्योंकि मुद्रा के मापदंड द्वारा पर्या सेवाओं का न तो सटीक मापन हो पाता है और न ही परिमाण निर्धारण। इस प्रकार के मूल्यांकन प्रयासों में कई तरह के पर्यातंत्रीय अंतर्संबंधों की अनदेखी की संभावना बनी रहती है। फिर भी, कोई भी मूल्य प्रदान नहीं करना भी शून्य मूल्य निर्धारण के समतुल्य रहता है। अतः किसी भी प्रकल्प की लागतों एवं हितलाभों का सामाजिक एवं पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन हरिततर संवृद्धि की प्राप्ति की दिशा में निर्णायक हो सकता है।

बोध प्रश्न 3

नोट : दिए गए स्थान में लगभग 100 शब्दों में उत्तर लिखे।

1) विकासशील देशों के लिए पर्यावरण की दृष्टि से संगतिपूर्ण SNA को अपनाना क्यों विशेष महत्त्वपूर्ण है? यहां EDP किस प्रकार सहायक रहता है।

.....

.....

.....

.....

.....

2) ECBA क्या है? एक उदाहरण द्वारा इसका मूल विचार स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

3) ECBA के सोपान बताइए। क्रियान्वयन पूर्व ECBA एवं क्रियान्वयन पश्चात् ECBA में भेद स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

4) किसी प्राकृतिक संसाधन के प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रयोजन मूल्यों में भेद स्पष्ट करें। इसके लिए उपयुक्त उदाहरण भी प्रयोग करें।

.....

.....

.....

.....

.....

5) समान प्रायः वस्तु बाजार क्या है? कौन-सी दो विधियां किन्हीं पर्या पदार्थों और सेवाओं के मूल्यांकन के लिए समान प्रायः बाजारों का सहारा लेती हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

14.7 सारांश

एक कहावत है ''जिसे मापा नहीं जा पाए उसका प्रबंधन भी नहीं हो पाता''। यह बात पर्यावरणीय संसाधनों पर बहुत अच्छी तरह से लागू होती है। वैश्विक ऊष्णन और प्राकृतिक पूँजी के क्षय-क्षरण जैसी चुनौतियों के संदर्भ में हमें पर्या-धारणीय संवृद्धि के एक उपयुक्त मापक की नितांत आवश्यकता है। हरित लेखांकन विधि एक ऐसा मापक गढ़ने का प्रयास करती है। इस लेखांकन विधि का प्रयोग करना कठिनाई भरा तो है, पर अव्यवहार्य नहीं है। इसी परिप्रेक्ष्य में इस इकाई में हमने राष्ट्रीय लेखांकन की प्रचलित पद्धति पर चर्चा करते हुए उसमें उन परिमार्जनों-संवर्धनों की ओर ध्यान आकर्षित किया है जो उसे पर्यावरणीय दृष्टि से भी सक्षम बना सकते हैं। इस संदर्भ में विकसित हुई दो विधियों SEEA और ECBA पर विस्तार से चर्चा की गई है। ये पर्या प्रभावों का पूर्वांकलन और उनके लिए प्रतिपूर्ति करने में सहायक हो सकते हैं।

14.8 शब्दावली

कार्बन संधारण : यह वातावरण से CO_2 गैस को ग्रहण कर उसको दीर्घकाल के लिए जमा करने की प्रक्रिया है। यहां वैश्विक ऊष्णन तथा जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों को कम करना ही उद्देश्य है।

पारिस्थितिकीय पद्चिन्ह : यह पर्यावरण पर मानवीय प्रभावों का प्रतिबिंब है। यह कृषि भूमि, वन, चारागाह और मत्स्य क्षेत्रों का सम्मिलित रूप है। इसमें मानवीय उपयोग के लिए भोजन, वस्त्र-रेशा और काष्ठ जुटाने तथा कचरे के निपटान पर आग्रह रहता है।

प्राकृतिक पूँजी : यह वायु, मृदा, जल, वन, जैविक विविधता आदि प्राकृतिक परिसंपदाओं का भण्डार है।

गैर-कृषित जैविक संसाधन : उन पशु-पक्षियों, मछलियों एवं पुष्पी पादपों का भण्डार जिनसे केवल एक बार या अनेक बार उत्पाद मिलता है, जिन पर 'स्वामित्व' भी बताया जाता है किंतु जिनकी प्राकृतिक वृद्धि या पुनः उत्पत्ति पर किसी संस्थागत इकाई का दायित्व या प्रबंधन नहीं होता।

प्रदूषण कर : यह फैलाए गए प्रदूषण या उन वस्तुओं पर कर है जिनका उत्पादन प्रदूषण फैलाता है।

मार्गदर्शन दायित्व : ये वे नैतिक दायित्व हैं जो संसाधन प्रबंधन में उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार को बढ़ावा देते हैं।

आभास/छाया कीमत : प्रदूषण और पर्या पतन की बाजार द्वारा निश्चित कीमतें तो नहीं होती किंतु उनकी संभव छाया कीमतों का अनुमान लगाया जा सकता है। यह छाया कीमत किसी पदार्थ की आपूर्ति में एक इकाई के परिवर्तन से सामाजिक क्षेत्र में आए परिवर्तन के समान है। उदाहरण के लिए, वन्य प्रदेश की छाया कीमत उसकी एक इकाई में परिवर्तन से सामाजिक क्षेत्र में आए परिवर्तन का माप है।

14.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Bartelmus, P (2013), 'Measuring Sustainable Economic Growth and Development,' http://www.eoearth.org/view/article/154541.
2. Harris, J. M. and B. Roach (2014), 'Environmental and Natural Resource Economics: A Contemporary Approach,' 3rd Edition, Chapter 8 National Income and Environmental Accounting, Routledge.
3. OECD (2006), 'Cost-Benefit Analysis and the Environment: Recent Developments,' Executive Summary, ISBN 92-64-01004-1, OECD.
4. Peskin, H. M. and M. S. Angeles (2001), 'Accounting for Environmental Services: Contrasting the SEEA and the ENRAP Approaches,' Review of Income and Wealth, Series 47, Number 2.
5. World Bank (2006), 'Where is the Wealth of Nations?', Washington, DC: World Bank.
6. World Bank (2011), 'The Changing Wealth of Nations: Measuring Sustainable Development in the New Millennium,' Washington.

14.10 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

नोट : सभी बोध प्रश्नों के उत्तर उनके सामने इंगित अनुच्छेद-अंशों को पढ़ने के बाद ही लिखें।

बोध प्रश्न 1

(1) 14.2 (2) 14.2 (3) 14.2 (4) 14.2 (5) 14.2 (6) 14.2 (7) 14.3 (8) 14.3

बोध प्रश्न 2

(1) 14.4 (2) 14.4 (3) 14.1 (4) 14.2 (5) 14.3 (6) 14.4.4 (7) 14.4.4

बोध प्रश्न 3

(1) 14.5 (2) 14.6 (3) 14.6.1 (4) 14.6.2 (5) 14.6.2

इकाई 15 सांझी संपदा संसाधन प्रबंधन

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 सांझे संपदा संसाधनों की (CPRs) की विशेषताएं
- 15.2.1 सांझी संपदाओं की समस्या
- 15.2.2 सांझी संपदा संसाधनों के प्रकार
- 15.2.3 विकास में सांझी संपदा संसाधनों की भूमिका

15.3 सांझी संपदा संसाधनों की अवधारणाएं
- 15.3.1 सांझी संपदा संसाधन प्रबंधन बनाम निजी संपदाधिकार प्रबंधन
- 15.3.2 संसाधन टकराव एवं सहयोग
- 15.3.3 बारंबार अंतर्संबध – परिमित एवं अपरिमित बारंबार द्यूत
- 15.3.4 गंभीर प्रारंभ युक्ति–काटा दर सहित

15.4 सांझी संपदा संसाधन प्रबंधन पर वास्तविक अध्ययन
- 15.4.1 भारत में सांझी संपदा संसाधन का प्रबंधन
- 15.4.2 वैश्विक सांझी संपदाओं का प्रबंधन

15.5 वैश्विक पर्या बाह्यताएं
- 15.5.1 जलवायु परिवर्तन
  - 15.5.1.1 आर्थिक विश्लेषण
  - 15.5.1.2 लागत-हितलाभ विश्लेषण
  - 15.5.1.3 दीर्घकालिक पर्या-प्रभाव
  - 15.5.1.4 नीतिगत प्रयास

15.6 सारांश

15.7 शब्दावली

15.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

15.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप कर सकेंगे;

- आर्थिक विकास में सांझी संपदा संसाधनों (CPRs) की भूमिका का वर्णन;
- CPRs विषयक सिद्धांतों की वैकल्पिक परिस्थितियों में व्याख्या;
- CPRs प्रबंधन पर हुए वास्तविक अध्ययनों के मुख्य निष्कर्षों का वर्णन;
- भारत में CPRs प्रबंधन व्यवहार की रूपरेखा का निरूपण;
- वैश्विक सांझा संपदाओं के प्रबंधन से जुड़े मुद्दों की व्याख्या; और
- वैश्विक पर्या बाह्यताओं की व्याख्या– विशेषकर जलवायु परिवर्तन के मापन और उसके निवारण हेतु बनाई जा रही नीतियों की समीक्षा सहित।

15.1 प्रस्तावना

विशाल ग्रामीण अर्थव्यवस्था और उच्च जनसंख्या वाले विकासशील देश स्थानिक रूप से उपलब्ध प्राकृतिक संसाधन आधार (सांझी संपदा) पर अपनी ईंधन, चारा, चारागाह, मत्स्य और सिंचाई हेतु जल की आपूर्ति के लिए बहुत अधिक आश्रित रहते हैं। उनकी आजीविका ही नदियों, नहरों, वनों और चारागाहों जैसी सांझी संपदाओं के प्रयोग पर

निर्भर रहती है। ये CPRs स्वतः ही जनसामान्य के जीवन का आधार होने के कारण अपने संरक्षण और प्रबंधन के लिए एक संप्रेरण संरचना का भी निर्माण कर लेते हैं। किंतु अब CPRs को अधारणीय स्तर पर विदोहन, प्रदूषण और अन्य कार्यों के लिए उनके उपयोग की चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। इनके कारण ग्रामीण निर्धनता, खाद्य-सुरक्षा, गांव से शहर को पलायन और शहरों में मलिन बस्तियों के उदय की समस्या भी पैदा हो रही है।

हार्डिन (1968) ने सांझा संपदाओं के अतिशय विदोहन की समस्या को ''सांझे की त्रासदी'' का नाम दिया है। प्रत्येक CPR के हितभागियों को औरों से पहले विदोहन कर अपना अंश अधिकतम करने की ललक रहती है – इसी कारण संसाधनों का अधारणीय स्तर पर क्षय होने लगता है। दूसरे शब्दों में, यदि सभी किसी संपदा के स्वामी हों तो किसी को भी उसे भविष्य के लिए सुरक्षित रखने की संप्रेरणा नहीं रहती। अतः प्रत्येक प्रयोक्ता अन्य हितभागियों के लिए ह्रासमान संसाधन उपलब्धिता के रूप में बाह्य लागतें थोपता चला जाता है। इसी मुफ्तखोरी की प्रवृत्ति के कारण CPRs में सामाजिक दृष्टि से अभीष्ट की अपेक्षा निवेश का स्तर न्यून रह जाता है – चारागाह की बाढ़ या मेंढ का निर्माण नहीं होता, सिंचाई सुविधाओं का रखरखाव नहीं किया जाता, वनों में पुनः वृक्षारोपण नहीं होता आदि। यही नहीं, प्रबंधन व्यवस्था निजी स्वामित्व के समतुल्य कीमत संकेतन प्रणाली के बिना ही संचालित किए जाने की नई चुनौतियां लेकर आती है जिनके कारण आर्थिक दृष्टि से दक्षतापूर्ण प्रबंध व्यवस्था की रचना सहज नहीं रहती। फिर भी कई देशों में बारी-बारी से सिंचाई और सामुदायिक वनरोपण आदि की नवीन प्रणालियां रचकर 'सांझे की त्रासदी' पैदा करने वाली मुफ्तखोरी पर अंकुश-लगाने के प्रयास किए गए हैं।

15.2 सांझे संपदा संसाधनों (CPRs) की विशेषताएं

सांझे संपदा संसाधन वे प्राकृतिक और मानव निर्मित संसाधन हैं जिन पर व्यक्तियों का निजी स्वामित्व नहीं होता। किंतु प्रायः संपदाधिकार किसी जनजाति, गाँव, कुटुम्ब, प्रयोक्ता, समिति, सहकारिता, नगर परिषद या स्थानिक प्रशासन के पास होता है और व्यक्तियों के उन संसाधनों का प्रयोग करने के कुछ नियम बने होते हैं। नॉबेल पुरस्कार विजेता एलिनर ऑस्ट्रोम ने पाया है कि अनेक सांझी संपदाएं किसी न किसी स्थानिक समुदाय द्वारा स्व-प्रबंधनाधीन होती हैं। सांझी संपदाओं के ये विशेष लक्षण होते हैं :

- समुदाय के किसी भी सदस्य को साधन प्रयोग से वंचित नहीं रखा जाता – यह **गैर बहिष्कृति** की विशेषता है। वस्तुतः किसी को रोक पाना बड़ा मंहगा सिद्ध हो सकता है, उसके लिए भौतिक और विधिक बाधाओं की आवश्यकता होती है। फिर भी बाहरी व्यक्तियों के प्रवेश/प्रयोग पर अवश्य कुछ प्रतिबंध रहते हैं।

- संसाधन प्रयोग में **स्पर्धा** रहती है – एक द्वारा प्रयुक्त संसाधन अन्य किसी के लिए उसी स्वरूप में सुलभ नहीं रह पाता। समुदाय के शेष सदस्यों के संभावी हितलाभ कम रह जाते हैं।

- CPRs के प्रयोग पर सुपरिभाषित स्थानिक समुदाय का एकछत्र संयुक्त अधिकार होता है – किसी व्यक्ति का **निजी अधिकार नहीं** होता।

- सार्वजनिक पदार्थों की भांति इन संसाधनों में भी कुछ **अविभाज्यता** का तत्त्व होता है। इसी से इन्हें **सामुदायिक पदार्थ** कहते हैं।

- CPRs के प्रयोग के संबंध में प्रत्येक स्थान और समाज के अपने ऐतिहासिक स्तर पर विकसित नियम विनियम मान्य रहते हैं – (ये विधिक संरचना का भाग नहीं होते)। इन्हीं के द्वारा इन संपदाओं से सृजित हितलाभों का बंटवारा होता है और इनमें बाहरी व्यक्तियों की घुसपैठ पर नज़र रखी जाती है।

तालिका 15.1 में CPRs का स्पर्धा और गैर-बहिष्कृति पर आधारित चतुर्विध वर्गीकरण दर्शाया गया है।

तालिका 15.1 : मुख्य विशेषताओं के अनुसार CPRs का वर्गीकरण

विशेषता	बहिष्करणीय	गैर-बहिष्करणीय
स्पर्धी	निजी पदार्थ (भोजन, वस्त्र, कार पार्किंग, स्थान)	CPRs– (मत्स्य भंडार वन काष्ठ, कोयल)
गैर-स्पर्धी	क्लब पदार्थ (सिनेमा, निजी उपवन, सेटेलाइट, टीवी)	सार्वजनिक पदार्थ (वायु, राष्ट्रीय सुरक्षा)

15.2.1 सांझी संपदाओं की समस्या

तालिका 15.1 दर्शा रही है कि सांझी संपदाओं में हितलाभियों की गैर-बहिष्कृति की समस्या सार्वजनिक पदार्थों जैसी ही होती है तो इनमें निजी पदार्थों की भांति उपभोग में स्पर्धा भी दिखाई देती है (अर्थात् एक व्यक्ति द्वारा उपभोग से अन्य व्यक्तियों के लिए उपलब्ध सामग्री कुछ कम रह जाती है)। अतः CPRs में ऋणात्मक बाह्यताओं (भीड़, अतिशय विदोहन, प्रदूषण आदि) की समस्याएँ बनी रहती हैं जो कई बार धारणीयता के लिए घातक बन सकती हैं। इसी कारण CPRs में नैतिक द्वंद्व या जोखिम का भी सामना हो जाता है – अर्थात् सामाजिक नियमों का पालन नहीं करने पर पकड़े जाने की निम्न संभावना के कारण दण्डित होने की आशंका भी बहुत निम्न रह जाती है। प्रायः CPRs के हितभागी अत्यंत गरीब वर्ग से होते हैं। अतः नियमों का उल्लंघन करते हुए पकड़े जाने पर उन्हें दण्डित कर पाना भी अधिक व्यावहारिक नहीं माना जाता। अतः CPRs के साथ परस्पर गुम्छित तीन सामाजिक दुविधाएं जुड़ जाती हैं : (i) अनेक हितभागी एक सांझी संपदा का विदोहन करते हुए 'सांझे की त्रासदी' को चरित्रार्थ करते हैं, (ii) अनुपालन के लिए ऐसे नियमों की रचना पर समय और प्रयास लगाना जिनका पालन नहीं हो पाएगा (नियमों का पालन तभी होता है जब कोई बाहरी शक्ति उन्हें लागू करे); और (iii) निगरानी एवं दंड व्यवस्था मंहगी होने के कारण सार्वजनिक पदार्थों वाली दुविधा यहां भी रहती है।

15.2.2 सांझी संपदा संसाधनों के प्रकार

हितभागियों के अधिकारों के अनुसार ये प्रकार भेद हो जाते हैं : (i) सांझी संपत्ति; (ii) निर्बंध प्रयोग; (iii) राजकीय संपत्ति; और (iv) निजी संपत्ति। बैलेंड और प्लेटिओ (1996) ने नियमानाधीन सांझी संपत्ति (जहां संसाधन के प्रयोग के विषय में नियम विद्यमान हैं) और गैर-नियमानाधीन सांझी संपत्ति (जहां प्रयोग को सीमित करने वाले कोई नियम नहीं होते)। गैर-नियमन संपदाओं का संरक्षण तो प्रयोक्ता समुदाय की सदाशयता द्वारा ही होता है, उनकी रक्षा के लिए कोई अन्य नियम लागू नहीं होते।

निर्बंध प्रयोग संसाधन उस स्थिति को व्यक्त करते हैं जहां नए उपयोगकर्ताओं के आगमन पर कोई नियंत्रण नहीं होता, अर्थात् पुराने उपभोक्ताओं का कोई विशेष स्वामित्व स्वीकार नहीं किया जाता। इसके उदाहरण है, अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं में जल संसाधन (मत्स्य आदि); वायु, वातावरण, खुले स्थान आदि। नवागंतुक प्रयोक्ता ऐसे संसाधन प्रयोग करने के लिए पूर्णतः स्वतंत्र होते हैं – इसीलिए उन द्वारा अतिविदोहन संसाधन क्षय तक पहुँचा सकता है। उदाहरण, अंतर्राष्ट्रीय महासागर क्षेत्र में बहुत अधिक मत्स्य आखेट, वायु प्रदूषण को देशीय सीमाओं में बांधे रखने की असमर्थता आदि। **राजकीय संपत्ति** औपचारिक रूप से सरकार के स्वामित्व में होती है और वह उनके प्रयोग पर एवं संरक्षण के नियम भी लागू करती है। जब सरकार नियम लागू करने में असमर्थ रह जाती है तो इनकी दशा भी निर्बंध प्रयोग संसाधनों जैसी हो जाती है। अनेक ऊष्ण कटिबंधीय वन प्रदेश विधिक दृष्टि से तो संबद्ध देशों की सरकारों की संपत्तियां हैं किंतु निरंतर अतिक्रमण, गैर कानूनी जंगल कटाई और निवास के कारण उनकी दशा निर्बंध प्रयोग संपदाओं जैसी हो गई है। **निजी संपत्ति** संसाधन वे हैं जिन पर किसी न किसी

निजी व्यक्ति का स्वामित्व है। आदर्श स्वरूप में तो संपदाधिकार वह होते हैं जो संपूर्ण एवं हस्तांतरणीय हों और स्वामी का उन पर व्यावहारिक रूप से कब्जा भी हो। तभी वह उनका अंतरण, प्रयोग – यहां तक की विनाश या समापन भी करने में समर्थ होगा।

ऐसे संसाधन क्षेत्र, जो किसी एक देश की सीमाओं में नहीं हो और सभी देशों को सुलभ हों, **वैश्विक सांझी संपदा** कहलाते हैं। अंतर्राष्ट्रीय कानून में चार प्रकार की वैश्विक सांझी संपदाओं का निरूपण किया गया है : (i) महासागर क्षेत्र प्रत्येक देश की तट से 200 मील की एक छत्र विदोहन सीमा से बाहर का महासागर क्षेत्र; (ii) वातावरण; (iii) अंटार्कटिका; और (iv) बाह्य व्योम मंडल। इन संसाधनों की व्याख्या समस्त मानव जाति की सांझी धरोहर के रूप में की जाती है। ऊष्ण कटिबंधीय वनों और जैविक विविधता जैसे विश्व जनकल्याण उपयोगी संसाधनों को भी अब वैश्विक सांझी संपदा माना जा रहा है।

इन वैश्विक संपदाओं के संदर्भ में सबसे बड़ी चुनौती, जानी-पहचानी **सांझे की त्रासदी,** से बचते हुए राष्ट्रीय और उप-राष्ट्रीय, सार्वजनिक एवं निजी हितों की दुरूहताओं का ध्यान रखते हुए उपयुक्त प्रशासन एवं प्रबंधन व्यवस्थाओं का निर्माण करना है।

15.2.3 विकास में सांझी संपदा संसाधनों की भूमिका

भारत में अनेक क्षेत्र आधारित अध्ययन सुझा रहे हैं कि CPRs ग्रामीण आजीविका उपार्जन व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनसे स्पष्ट होता है कि ये संसाधन आर्थिक क्षेत्र संवर्धक हैं और इसी नाते गरीबी निवारण की नीतियों के निर्माण में बहुत सहायक रहते हैं। सांझी संपदाओं की उपर्युक्त भूमिका के विषय में इन दो आयामों पर विशेष रूप से ध्यान दिलाया गया है :

1) कृषि संकट काल में तो सांझी संपदाएं सुरक्षा जाल का काम भी देती है। ग्रामीण समाज के लिए मुख्य व्यवसाय– कृषि से प्राप्त होने वाली आय पर्याप्त नहीं होती।

2) कृषि उत्पादन कार्यों और CPRs के प्रयोग में परिपूरकता होती है। सांझी संपदा संसाधनों के संरक्षण से ही कृषि आदानों के बहुत महत्त्वपूर्ण अंश (पशुचारा, चारागाह, सिंचाई हेतु जल आदि) उपलब्ध हो पाते हैं। यह तथ्य भी कृषिक विकास और CPRs के संरक्षण के बीच परिपूरकता का एक प्रमाण बन जाता है।

उपर्युक्त तथ्यों के संदर्भ में CPRs का प्रबंधन दक्षता एवं धारणीयता के विचारों के अनुरूप होना चाहिए। दक्षता की दृष्टि से CPRs पैमाने के लाभ सृजित करते हैं। मानवीय श्रम, स्थानिक एवं आधुनिक तकनीकी ज्ञात के समन्वित प्रयोग से CPRs प्रबंधन उनके उत्पादक प्रयोजन में पैमाने के प्रतिफल सृजित कर देता है। CPRs की उच्चतर धारण क्षमता भी इतनी ही महत्त्वपूर्ण है। तीन वैकल्पिक प्रबंधन प्रणालियों (निजी, CPRs और निर्बंध प्रयोजन) पर विचार करें तो यह बात बहुत ही स्पष्ट हो जाती है। हमारा चित्र 15.1 भू-उत्पादिता को दक्षता का एक सूचक मानकर चित्रित किया गया है।

यहां P_1 स्तर तक तो निजी संपदाधिकार ही बेहतर होता है। किंतु P_1 से आगे धारण क्षमता की दृष्टि से CPRs प्रबंधन निजी संपदा से श्रेष्ठतर सिद्ध होता है। निर्बंध प्रयोजन प्रणाली तो निजी एवं CPRs प्रणालियों की विफलता का ही परिणाम होती है और इसमें प्रबंधन दक्षता न्यूनतम रहती है। अधिकतम उत्पादित के रूप में परिभाषित निजी प्रबंधन की धारणीय क्षमता CPRs की अपेक्षा बहुत कम रह जाती है। अतः CPRs का सुदक्ष प्रबंधन विकास एवं पर्यावरण के दोनों आयामों द्वारा समाज के लिए लाभप्रद रहता है।

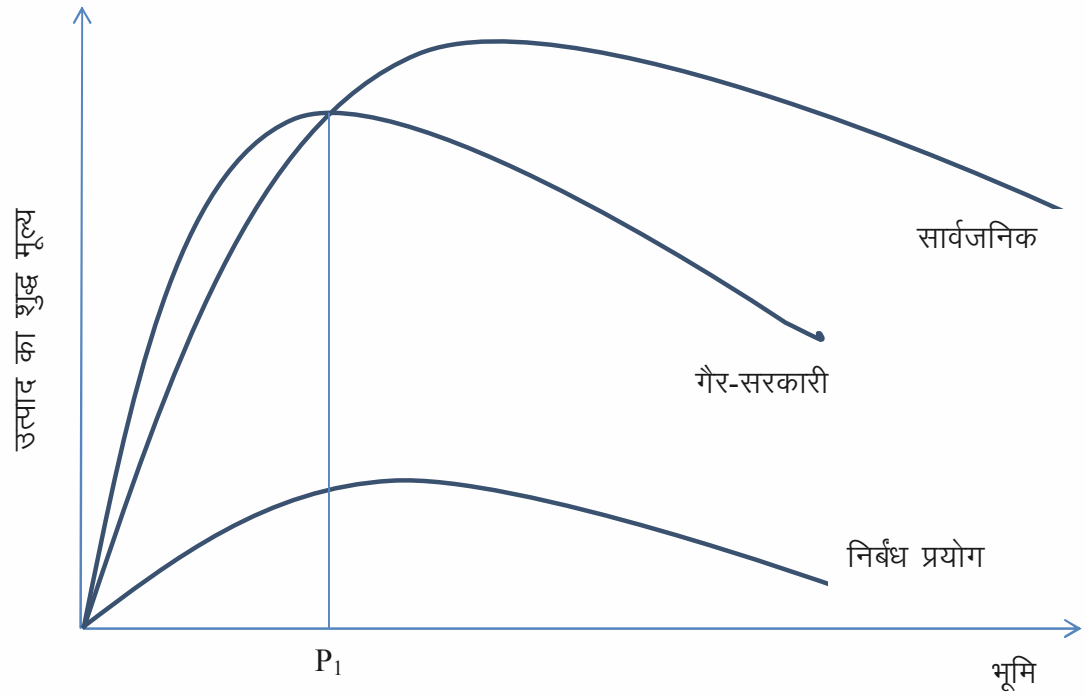

चित्र 15.1 : भू-प्रयोजन दक्षता और संपदा अधिकार प्रणालियां

बोध प्रश्न 1

नोट : दिए गए प्रश्नों का उत्तर लगभग 100 शब्दों में लिखें।

1) अपनी किस विशेषता के कारण सांझी संपदा संसाधनों (CPRs) को ''सामुदायिक पदार्थ'' भी कहते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) सांझी संपदा संसाधनों में उठने वाली तीन सामाजिक दुविधाएं बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

3) अंतर्राष्ट्रीय कानून द्वारा मान्य चार वैश्विक सांझी संपदाएं कौन-सी हैं।

.....

.....

.....

.....

.....

4) सांझी संपदा संसाधन संरक्षण को ग्रामीण आजीविका तथा ग्रामीण विकास से जोड़ने वाले कौन-से तर्क प्रायः दिए जाते हैं।

.....

.....

.....

.....

.....

15.3 सांझी संपदा संसाधनों की अवधारणाएं

निजी संपदाधिकारों की तुलना में CPRs के प्रबंधन की सापेक्ष दक्षता को समझने के लिए हम एक सांझी चारागाह के उद्धरण से चर्चा का आरंभ कर रहे हैं। फिर हम उन दशाओं पर विचार करेंगे जहां संसाधनों हेतु टकराव और सहयोग के प्रश्न पैदा होते हैं।

15.3.1 सांझी संपदा संसाधन (CPRs) प्रबंधन बनाम निजी संपदाधिकार प्रबंधन (PPRs)

एक चारागाह में चारा उत्पत्ति की दो वैकल्पिक प्रबंध विधियां हो सकती हैं : निजी और सांझी संपदा व्यवस्था (देखें चित्र 15.2)। मान लें कि OX_C द्वारा CPRs के अंतर्गत विभिन्न चारा क्षेत्र प्रयोग स्तरों के अनुसार 'सीमांत चारा उत्पाद' दिखाया गया है। इसी प्रकार OX_P निजी प्रबंध व्यवस्था में सीमांत चारा उत्पाद दिखा रहा है। बिंदु R_X तक तो निजी प्रबंधन व्यवस्था में चारे की अधिक उपलब्धिता स्पष्ट हो रही है। उससे आगे चलने पर संसाधन प्रयोक्ताओं की भीड़, संसाधन अविभाज्यता, स्पर्धा और अनिश्चितता के कारण चारागाह की निवल निजी सीमांत उत्पादिता में तेज़ी से कमी होने लगती है। किंतु CPRs प्रबंधन व्यवस्था के अंतर्गत तो R_X बिंदु से आगे भी OX_C वक्र उच्चतर सीमांत उत्पाद दर्शाता रहता है और यह E से A तक उठने के बाद A से B तक गिरने लगता है। इसकी गिरावट B से C अंतराल में ही तीव्रतर होती है। मान लें कि OY_C द्वारा CPR व्यवस्था के अंतर्गत सीमांत संसाधन लागत है तो निजी प्रबंधन में यह लागत OY_P है। निहित मान्यता यही है कि सांझी प्रणाली में पशुपालन लागतें अपेक्षाकृत कम रहती हैं, किंतु, दोनों ही प्रणालियों में ये लागतें निरंतर वृद्धिमान रहती हैं। अतः अधिकतम निवल हितलाभ के नियम के अनुसार CPR में दक्ष स्तर R_C तथा PPR में R_P होगा। ये सीमांत उत्पादिता एवं सीमांत लागत वक्रों के प्रतिच्छेदन बिंदु ही हैं। CPR प्रबंधन में संसाधन विदोहन (और चारा उत्पादन) अधिक है और साथ ही निवल हितलाभ भी। इस 'परिणाम' की प्रायः गलत व्याख्या कर यह कह दिया जाता है कि CPR व्यवस्था में अधिक संसाधन प्रयोग होने के कारण यहां संसाधन पतन की आशंका अधिक रहती है। यदि उचित सांझे-सामुदायिक प्रबंधन नियमों का विकास-क्रियान्वयन हो तो समाज CPR तथा निजी व्यवस्था के सीमांत लागत अंतर को बचा सकता है और राशियों का भावी हितलाभों एवं संसाधन विकास हेतु निवेश किया जा सकता है। यदि उक्त संसाधन को निर्बंध प्रयोग हेतु सुलभ माना जाता है तो प्रयोक्ता वर्ग सकल हितलाभ और सकल संसाधन लागत की तुलना की कसौटी अपना सकते हैं। यह R_O बिंदु है। यहां CPR व्यवस्था में R_C तक के सभी निवल सकारात्मक हितलाभ अर्थात् सीमांत उत्पादिता और सीमांत लागत के बीच का अंतर (चित्र में छायांकित क्षेत्र) है। इनकी तो R_C और R_O के बीच संसाधन प्रयोग के नकारात्मक निवल हितलाभों द्वारा निरस्त हो जाती है। इस सैद्धांतिक प्रतिमान में मुख्य स्पष्टीकरण यही हो रहे हैं कि (i) अविभाज्य स्वरूप के बड़े जलाशय, चारागाह या वन क्षेत्र आदि के संदर्भ में CPR व्यवस्था एक उचित प्रबंधन प्रणाली का प्रयोग संभव बना सकती है जो बड़े स्तर पर संसाधन विदोहन में सहायक रहती है; (ii) CPR के निवल सकल हितलाभ निजी प्रणाली के निवल हितलाभों से अधिक रहते हैं; (iii) CPRs व्यवस्थाएं निर्बन्ध प्रयोग व्यवस्थाओं से धारणीयता की दृष्टि से श्रेष्ठतर रहती है; और (iv) CPR प्रबंधन संसाधन

प्रयोग को अधिकतम धारणीय उत्पत्ति स्तर से कम रखने में सफल रहता है। इन सैद्धांतिक विशेषताओं के आधार पर दावा किया जाता है कि ऐसे संसाधन आश्रित समाज को CPR प्रबंधन प्रणाली अधिक हितलाभ सुलभ करा पाती है। किंतु यदि इस प्रणाली की प्रशासन, संचालन, नियमन की लागतें निजी प्रबंधन से अधिक हो जाएं या CPR प्रबंधक कीमतों जैसे बाजार के संकेतों को ठीक से नहीं समझ पाएं तो यह CPR व्यवस्था दक्षता हानि के कारण चरमरा भी सकती है।

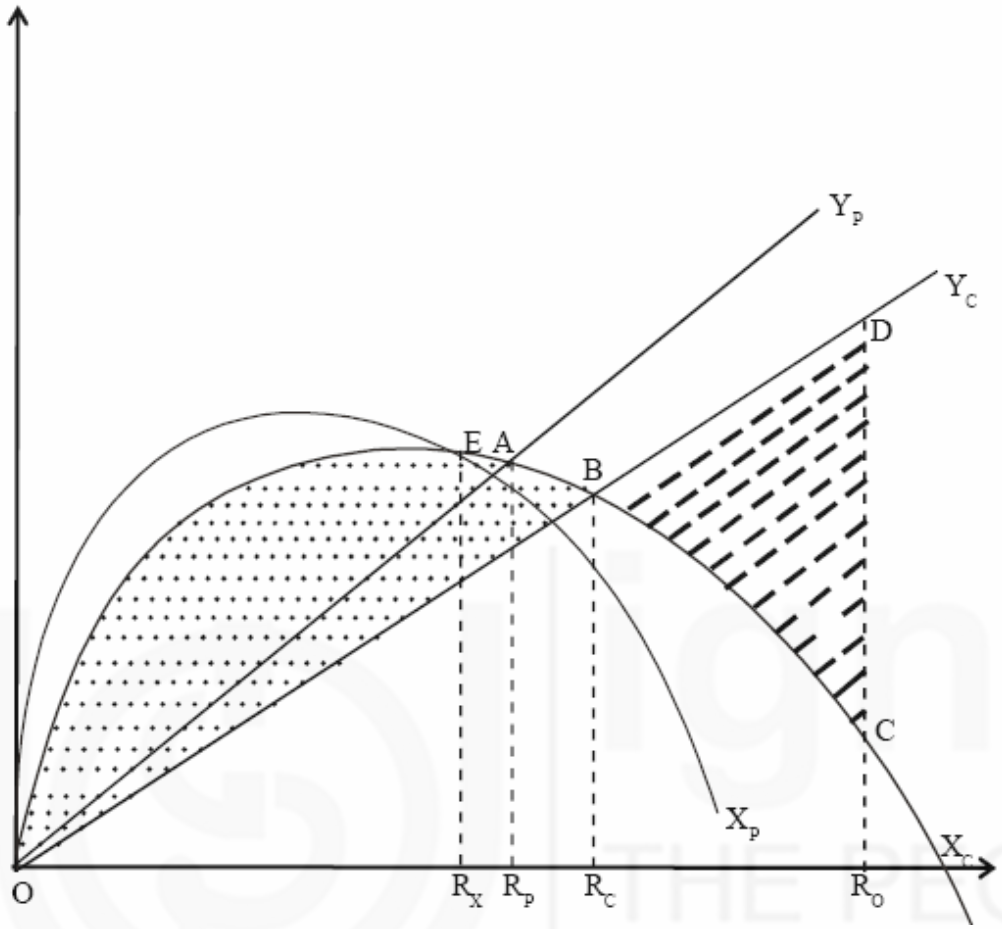

चित्र 15.2 : चारागाह भूमि संसाधन

15.3.2 संसाधन टकराव एवं सहयोग

किसी सुनिश्चित CPR के कर्त्ताओं और पणधारियों के बीच यौक्तिक अंतर्संबंधों के विश्लेषण के लिए CPR प्रबंधन गैर-सहयोगी क्रीड़ा सिद्धांत का प्रयोग करता है। प्रायः CPR प्रबंधन की निर्णय प्रक्रिया को यहां ''संसाधन संरक्षण की दुविधा'' का सामना करना पड़ता है। ''दो व्यक्ति एक बारी'' क्रीड़ा में तो ऐसे संदर्भ में ''बंदी की दुविधा'' प्रतिमान का प्रयोग किया जाता है – यहां असहयोगी व्यवहार ही 'प्रबल युक्ति' रहता है। यही हार्डिन के 'सांझे की त्रासदी' प्रतिमान का सैद्धांतिक आधार भी है और ऑल्सन का 'सांझे व्यवहार' का तर्कशास्त्र भी। तालिका 15.2 में हम ऐसी ही एक 'बंदी की दुविधा' क्रीड़ा दर्शा रहे हैं, यहां P सहयोगी युक्ति तथा D गैर-सहयोगी व्यवहार को दर्शा रहे हैं।

एक ग्राम की चारागाह की कल्पना करें जहां दो व्यक्ति अपने मवेशियों को चराते हैं। कोई भी व्यक्ति अपने मवेशी समूह में अधिक पशुओं को शामिल कर लाभ उठाने का प्रयास कर सकता है किंतु ऐसा व्यवहार एक सीमा के बाद सांझी संपदा (चारागाह) को अधारणीय बना देगा। अतः दोनों के सामने दो विकल्प हैं – सहयोग (P) तथा असहयोग (D)। हम पहले ग्रामवासी के व्यवहार को पंक्ति तथा दूसरे को स्तंभवत् दर्शा रहे हैं। उनके संभावित व्यवहार 4 कोष्ठकों में दर्ज हैं – जहां उनके प्रतिप्राप्ति स्तर दर्शाए गए हैं। यदि दोनों अपने मवेशियों की संख्याओं को धारणीय स्तर तक सीमित रखें तो उनके

प्रतिप्राप्ति स्तर (B, B) = (7, 7) होंगे। किंतु यदि एक व्यक्ति इस सहयोग व्यवस्था से बगावत करता है तो उसकी प्रतिप्राप्ति 10 हो जाती है तथा दूसरा केवल 'O' पा सकता है। अतः (p, d) = (v, r) = (0, 10) या (r,v) = (10,0) स्पष्ट है, दोनों ही ग्रामवासियों को व्यवस्था को तोड़कर अधिक लाभ उठाना आकर्षक लगता है। वे मुफ्तखोरी या अतिशत विदोहन (अधिक पशु चराना) ही फायदेमंद पाते हैं। दोनों द्वारा बगावत या मुफ्तखोरी (D, D) = (t, t) ही प्रबल युक्ति बन जाती है और वे दोनों ही (4, 4) की प्रतिप्राप्ति को पा सकते हैं। सांझी व्यवस्था में भागीदारी किसी को भी 'निजी हित' में नहीं प्रतीत होती। इसी को मैंकर ऑल्सन (1965) ने ''निजी तर्कशीलता द्वारा सांझी तक विहीनता की व्युत्पत्ति'' का नाम दिया है।

तालिका 15.2 : P-D संसाधन संरक्षण क्रीड़ा

		ग्रामीण -2	
	P/D	भागीदारी 'P'	बगावत 'D'
ग्रामीण -1	भागीदारी P	(s, s) = (7, 7)	(v, r) = (0, 10)
	बगावत D	(r, v) = (10, 0)	(t, t) = (4, 4)

यहां सहयोग धारणीय नहीं रह पाता। दोनों को ही यह आशंका घेरे रहती है कि कहीं दूसरा व्यक्ति व्यवस्था से विद्रोह कर उसे शून्य प्रति प्राप्ति तक नहीं धकेल दे। ये परस्पर आशंका ही उन्हें (D, D) की युक्ति की ओर ले जाती है, जहां उन्हें (t, t) = (4, 4) की ही प्रतिप्राप्ति हो पाती है। यह 'परस्पर श्रेष्ठ' युक्ति नैश संतुलन को दर्शाती है किंतु यह सामाजिक दृष्टि से 'पैरेटो अभीष्ट' नहीं रह पाती। अतः संस्थागत नियंत्रण व्यवस्था का अभाव व्यक्तियों को सांझी संपदाओं का अतिशय विदोहन करने को प्रेरित कर सकता है। जब तक किसी संसाधन के लिए एक से अधिक व्यक्तियों में स्पर्धा होगी, प्रति प्राप्ति संरचना $r > s > t > y$ की विषमिका का ही अनुसरण करेगी। अर्थात् हार्डिन की 'सांझे की त्रासदी' का, जहां एक द्वारा विदोहन से दूसरे के लिए नकारात्मक बाह्यता का सृजन हो जाता है। ऐसे अतिशय विदोहन को रोकने के लिए तो एक सबल अधिकार संपन्न व्यवस्था का होना आवश्यक है – जैसे कि सरकार, जो CPRs के संरक्षण में भागीदार नहीं बनने वाले व्यक्तियों को दण्डित करने में सक्षम हो। यदि संभावित हितलाभों पर दंड के भारी पड़ने की आशंका हो तभी यह ऊपर से नीचे की प्रभावी व्यवस्था CPRs के कुशल प्रबंधन में सफल हो कती है। आइये, इसे एक उद्धरण द्वारा और स्पष्ट करें।

मान लें कि व्यवस्था भंग करने वाले पर पकड़े जाने पर लगाने वाला जुर्माना F तथा उसके पकड़े जाने की संभावना m है। अतः उसका अपेक्षित जुर्माना होगा : $mF + (1 - m)\ 0 = f$. यदि यह f इतना हो तो कि $(r–f) < s$ रहे तो नैश संतुलन होगा (P, P) = (7, 7)। यदि $(t – f) < v$ तो PD द्यूत का एक विलक्षण नैश संतुलन (P, P) होगा। यदि f = 4 तो PD द्यूत का प्रतिप्राप्ति आव्यूह तालिका 15.3 जैसा हो जाएगा :

तालिका 15.3 : P D जब f जुर्माना भरना पड़े

		ग्रामीण -2	
		भागीदारी P	बगावत D
ग्रामीण -1	भागीदारी P	(p, p) = (7, 7) (N E)	(v, r–f) (1, 6)
	बगावत D	(r–f, v) = 6, 1	(t–f, t–f) = (0,0)

15.3.3 बारंबार अंतर्संबध : परिमित एवं अपरिमित बारंबार द्यूत

प्राकृतिक संपदा के प्रयोग पर ''बंदी की दुविधा'' जैसे प्रतिमान लागू करने में एक गंभीर समस्या रहती है। यहां तो अधारणीय स्तर तक मुफ्तखोरी का खतरा बहुत ही वास्तविक रहता है किंतु यदि उन्हीं खिलाड़ियों द्वारा एवं उन्हीं युक्तियों के बारंबार सांझा संपदा विदोहन में प्रयोग के परिवेश पर विचार करें तो अनन्तकालिक द्यूत में स्वतः ही सहयोग का संचार हो जाएगा। हां, सीमित समय में ही इस सहयोग का उभर कर आना संभव प्रतीत नहीं होता। फिर तो सीमित (भले ही दीर्घकाल के लिए उपद्यूत पूर्ण नैश संतुलन (SpNe) का अन्वेषण पश्चगामी अवलोकन विधि से हो सकता है। यह विलक्षण समाधान परस्पर असहयोग – या (बगावत, वगावत) ही होगा।

T अवधियों तक चले सीमित कालिक (P, D) द्यूत पर विचार करें। पश्चगामी अवलोकन विधि में हमारा प्रारंभिक बिंदु T वीं अवधि होगा। यह क्रीड़ा T से आगे तो चलने वाली नहीं है, इसीलिए भविष्य में किसी दंड की कोई आशंका नहीं होगी। अतः T वीं अवधि में (P, P) के वचन का कोई अर्थ नहीं रहता। इसीलिए, दोनों ही खिलाड़ियों के लिए बगावत या मुफ्तखोरी ही प्रबल युक्ति बची रहती है। अतः इस 'अंतिम' क्रीड़ा को तालिका 15.2 जैसी माना जा सकता है। दोनों ही जानते हैं कि वे दूसरे पक्ष को भविष्य में दंडित नहीं कर पाएंगे। अतः उनका निर्णय (D, D) हो जाता है – जो कि नैश का एक बारगी द्यूत जैसा ही है। इसी प्रकार का तर्क (T–1) अवधि और फिर (T–2) आदि अवधियों पर भी लागू होगा। इसीलिए (D, D) SpNe बन जाता है।

किंतु क्रीड़ा के अनन्त काल तक चलने की दशा में सशर्त सहयोग और दण्ड की संभावनाएं उभर आती हैं। यहां तो अंतिम अवधि अनिश्चित रहती है, अतः पश्चगामी अवलोकन विधि काम नहीं आ पाएगी और उपद्यूत पूर्णता की ओर अग्रसर (पश्चसर) हो पाना संभव नहीं होगा। अतः अनन्तकालिक या अनिश्चित कालिक क्रीड़ा परिवेश में बगावत के प्रति दण्ड की युक्ति प्रभावित हो सकती है।

15.3.4 गंभीर प्रारंभ युक्ति : काटा दर सहित

दंड की गंभीर प्रारंभ युक्ति में जहां सहयोग का पारितोषिक सहयोग होता है, वहीं एक बार किसी एक द्वारा बगावत दूसरे पक्ष द्वारा निरंतर बगावत या असहयोग का क्रम प्रारंभ कर देता है। यहां अंतर्भूत विचार यही है कि दीर्घकालिक प्रतिप्राप्तियों में भारी कटौती की आशंका ही किसी खिलाड़ी को अल्पकालिक लाभ उठाने के लोभ का संवरण करने को बाध्य करती है। अतः किसी भी अवधि 't' में उसकी चाल (t–1) अवधियों तक के परिणामों के आंकलन पर निर्भर करेगी। हम मानकर चलते हैं कि (i) खेल (P, P) से प्रारंभ होता है; (ii) अतः n-वीं अवधि में खिलाड़ी वही युक्ति अपनाते हैं जो उनके प्रतिपक्षियों ने (n – 1) में अपनाई थी; और (iii) δ एक काट दर है, तथा $0 \leq \delta \leq 1$ एवं $\delta \to 1$ अर्थात् खिलाड़ी अधिक से अधिक सब्रवान होते चले जाते हैं। यदि सहयोग युक्ति (C, C) से प्रतिप्राप्तियों के 'काटाकृत' मूल्य प्रवाह पर विचार करें तो यह वर्तमान मूल्य होगा :

$$PDV_c = s + s\delta + s\delta^2 + s\delta^3 + s\delta^4 .....$$
$$= s(1 + \delta + \delta^2 + \delta^3 + \delta^4 .....) = \frac{\delta}{1-\delta}$$

प्रतिद्वंद्वी द्वारा बगावत करने पर प्रतिप्राप्ति का वर्तमान मूल्य रह जाएगा :

$$PDV_c = r + \delta t + s^2 t + \delta^3 t + \delta^4 t .....$$
$$= r + \delta t(1 + \delta + \delta^2 + \delta^3 .....)$$
$$= r + \frac{\delta t}{1-\delta}$$

दोनों पक्ष (C,C) की युक्ति अनंत काल तक अपनाते रहेंगे, यदि $\frac{\delta t}{1-\delta} > r + \frac{\delta t}{1-\delta}$

या $\frac{s-\delta t}{1-\delta} > r$ या $(s-\delta t) > r(1-\delta)$

या फिर $\delta > \frac{(r-s)}{(r-t)}$

यहां भी हम तालिका 15.2 वाले ही प्रतिप्राप्ति प्रतिबंध मान रहे हैं, अर्थात् $r > s > t > v$
अतः $(r-s) < (v-t)$

अतः $\delta^* = \frac{r-s}{r-t}$ निर्णायक काटा गुणांक होगा

यदि $\delta > \delta^*$, अनंतकालिक P, D क्रीड़ा में सहयोग धारणीय बन जाएगा और सांझे की त्रासदी की आशंका का निवारण हो जाएगा। यदि δ का मान पर्याप्त आकार का हो तो अर्थ होगा कि खिलाड़ियों में पर्याप्त सब्र है और वे अपने दीर्घकालिक हितलाभ को अल्पकालिक लाभ से बेहतर मानते हैं।

बोध प्रश्न 2

नोट : लगभग 100 शब्दों में अपने उत्तर लिखें।

1) सांझी संपदा प्रबंधन (CPRs) और निजी संपदाधिकार प्रबंधन (PPRs) प्रबंधनों की तुलना के लिए प्रयुक्त प्रतिमान के 4 प्रमुख निष्कर्ष बताइए। किन दशाओं में CPR प्रबंधन PPR पर अपनी श्रेष्ठता खो बैठते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) दो ग्रामीण चरवाहों की युक्ति क्रीड़ा में वैयक्तिक तर्कशीलता द्वारा सामुदायिक तर्कशीलता के विनाश से हमारा क्या अभिप्राय होगा?

.....

.....

.....

.....

.....

3) प्रश्न 2 में उद्धृत उदाहरण में प्रबल युक्ति सामाजिक/पैरेटो अभीष्ट है, व्याख्या करें।

.....

.....

.....

.....

.....

4) दुर्लभ CPRs में दोहराए जाने वाली क्रीड़ा में दो में से किस दशा में (सीमित या असीमित) में एक SpNe सुनिश्चित हो जाता है? क्यों?

.....

.....

.....

.....

.....

5) द्वि-युक्ति परस्पर सहयोग (C, C) तथा प्रतिद्वंद्वी द्वारा बगावत के द्यूत में इन खिलाड़ियों द्वारा अनन्तकाल तक (C, C) का अनुसरण करने के लिए आवश्यक 'वर्तमान काटाकृत मूल्य' का निरूपण करें।

.....

.....

.....

.....

.....

15.4 सांझी संपदा संसाधन प्रबंधन पर वास्तविक अध्ययन

सभी CPR न तो सफलता के ज्वलंत उदाहरण बन पाते हैं और न ही नितांत विफलता के। अतः विभिन्न अध्ययन समय और स्थान भेद के साथ हमें ग्रामीण समुदायों की अपने सांझे संसाधनों की प्रबंध क्षमता के विषय में कई प्रकार के तथ्यों के दर्शन कराते हैं।

1) छोटे समूह/छोटे गांव अपने सांझे संसाधनों का अधिक कुशल प्रबंधन कर पाते हैं।

2) प्रायः समुदाय नियम भंग करने वालों को जुर्माने, नैतिक सहमति और सामुदायिक बहिष्कार आदि के माध्यम से मर्यादित करते हैं।

3) संभावित लाभ विशाल होने की दशा में सहयोग एवं सामुदायिक प्रयास द्वारा प्रबंधन की सफलता की संभावना अधिक रहती है। यह ऐसी दशा है जहां CPRs से समुदाय की आय का बहुत बड़ा अंश सृजित होता है और उन संसाधनों के क्षय से बहुत बड़ी हानि की आशंका सभी को स्पष्ट दिखाई देती है।

4) गलत मार्गदर्शन या फिर सरकार आदि के बाहरी हस्तक्षेप में परंपरागत प्रबंध व्यवस्था के बिखर जाने की आशंका रहती है। यहां कहीं भी उपनिवेशी या राष्ट्रीय सरकारों ने प्राकृतिक संसाधनों का 'राष्ट्रीकरण' किया है – वहां ऐसे ही वर्तमान CPR प्रबंधन के विघटन के प्रमाण मिले हैं। इस विफलता के कारणों में कहीं स्थानिक स्तर की सटीक जानकारी का अभाव तो कहीं स्थानिक पणधारियों को व्यवस्था से परे रखना – या फिर दोनों ही प्रमुख रहे हैं। इनके कारण संपदा देखरेख और तत्संबंधी नियमों का क्रियान्वयन बहुत ही खर्चीले हो जाते हैं। प्रायः नीति निर्माता स्थानीय संस्थात्मक, सांस्कृतिक, तकनीकी और प्राकृतिक वातावरण पर पूरा ध्यान नहीं दे पाते। कुछ गाँवों में गैर-सरकारी संगठनों ने सांझे भू एवं जल संसाधनों के प्रबंधन में स्थानीय श्रमिकों को बड़े स्तर पर जोड़ने का कार्य किया है।

5) CPRs और समता के बीच बड़ा गहरा और दुरूह संबंध है। सामुदायिक स्तर पर सांझे विषमता निवारण प्रयासों के परिणाम बहुत स्पष्ट नहीं रहे हैं। वैसे भी ऐसे सामुदायिक प्रयासों और नियमों के अनुपालन के लिए सदस्यों के बीच पारस्परिक विश्वास की आवश्यकता होती है। प्रयोक्ताओं के बीच किन्हीं ऐतिहासिक या अन्य कारणों से विद्यमान आय और उत्पादन क्षमता की विषमताएं अविश्वास को जन्म देकर ऐसे टकराव की स्थिति उत्पन्न कर सकती हैं जिसमें सहमतिपूर्ण आचरण

सहज संभव नहीं रहता। देश के कई भागों में तथा कथित उच्च एवं निम्न वर्णों (जातियों) के बीच टकराव का एक लंबा इतिहास रहा है। अनेक उदाहरण हैं जहां लोकतान्त्रिक वन परिषदों द्वारा नियंत्रित CPR पर शक्तिशाली दबंग वर्गों द्वारा अनाधिकृत कब्ज़े और उनके कमजोर वर्गों के हितों के विरुद्ध प्रयोग बहुत स्पष्ट नज़र आते हैं (रिबट, 1995)। इसी प्रकार न्यूजेंट (1993) ने दर्शाया है कि किस प्रकार स्थानीय संगठन एवं सस्थान भी भाड़ाखोरी और दक्षताहीनता की उसी समस्या से ग्रस्त हो जाते हैं जो राष्ट्रीय स्तर पर राजनीति पर छाई रहती है।

6) ऐसा भी स्पष्ट हुआ है कि कई बार विषमताएं ही सार्वजनिक प्रयास की संप्रेरक शक्ति बन जाती हैं (जोधा, 1992)। इन से पता चलता है कि गरीब वर्ग की आय के लिए CPRs पर निर्भरता धनिक वर्ग की तुलना में कहीं अधिक होती है। यही आय की विषमता में कमी का कारण बन जाती है। गरीबों की समय की अवसर लागत कम होती है और वे तुरंत CPRs में काम करने को तैयार हो जाते हैं। सहरेतर अफ्रीका के ग्रामीण क्षेत्रों में तो सांझा संपदा कृषि भूमि, चारागाहें और अन्य संसाधन प्रायः सामाजिक सुरक्षा जाल का काम करते हैं और अनुपस्थित बीमा बाजारों का स्थान ले लेते हैं।

उपर्युक्त निष्कर्ष यही दिखाते हैं कि सांझी संपदा संसाधन एक महत्त्वपूर्ण आर्थिक भूमिका निभाते हैं। अनेक CPRs से जुड़ी विनिमय लागतें भी कम रहती हैं। भौगोलिक दृष्टि से फैले हुए इन संसाधनों तक सहज एवं निश्चित पहुंच ही CPRs को बीमे की भूमिका निभाने में समर्थ बनाती है। वर्षा, जल सुलभता और हरियाली में व्यापक क्षेत्रीय विविधता के कारण सामान्य एवं अर्द्धशुष्क ऊष्ण कटिबंधों में चरवाहों को CPRs की सहज सुलभता का ही एक मात्र आसरा रहता है। कुछ लेखक (न्यूजेंट, संचेव, 1993) आग्रह करते हैं कि CPR प्रबंधन कार्यों के निष्पादन में कृषिक सहकारिताओं की अपेक्षा जनजातीय संस्थाएं अधिक प्रभावी भूमिका निभा सकती है।

15.4.1 भारत में सांझी संपदा संसाधन का प्रबंधन

ब्रिटिश पूर्व भारत के बहुत बड़े भू-भाग में प्राकृतिक संसाधन ग्रामीण समाज को सहज सुलभ थे। इन पर प्रायः स्थानीय समुदायों का ही नियंत्रण रहता था। किंतु इन पर सरकारी नियंत्रण में वृद्धि के परिणामस्वरूप सामुदायिक प्रबंधन प्रणालियों का क्षय होता गया और ग्रामीण समाज को सुलभ CPRs का ह्रास होता गया। आज देश के सभी भागों में ग्रामीण समाज के विधिक अधिकार कुछ ही प्रकार की भूमियों और जल संपदाओं तक सिमट कर रह गए हैं। फिर भी, बहुत व्यापक स्तर पर ग्रामीण जनजीवन में CPRs की महती भूमिका को स्वीकार किया जाता है। इस संदर्भ में इस भाग में हम CPRs के आकार, उनसे प्राप्त हितलाभों के प्रकारों तथा उन CPRs का प्रयोग करने वाले परिवारों के अनुपात आदि पर आधारभूत आंकड़े प्रदान कर रहे हैं।

- भारत के बड़े राज्यों में सांझी संपदा भण्डार माने जाने वाले भू-क्षेत्र का विस्तार 700 लाख हेक्टेयर है (चोपड़ा एवं गुलाटी, 2001)। इसमें से वन क्षेत्रों का विस्तार 251 लाख हेक्टेयर है। शेष समस्त सांझी संपदा भूमि संसाधनों पर विभिन्न प्रकार की स्थानीय संस्थाओं का अधिकार है, इसमें से कुछ पर निजी अधिकार भी हैं किंतु ऐसे क्षेत्र भी समय-समय पर सहज सुलभ रहते हैं।

- जब 1980 के दशक में अनेक व्यक्ति देश में भू-सुधारों की विफलता का रोना रो रहे थे, जोधा (1986) के CPRs विषयक अध्ययन ने एक अलग ही प्रकार का प्रश्न उठा दिया था : कि भू-सुधारों से कौन लाभान्वित होता है और किसे घाटा सहन करना पड़ता है? उसके अध्ययन के तीन मुख्य निष्कर्ष रहे : (i) धनिक ग्रामीण समाज को निजीकरण का अधिकांश लाभ मिला, गरीबों के हिस्से तो प्रायः घटिया (अनुत्पादक) भूमि ही आई; (ii) CPRs के निजीकरण से उन संसाधनों से प्राप्त होने वाली मुख्य आय के स्रोत सूख गए; तथा (iii) आय की हानि की दृष्टि से ग्रामीण समाज के गरीब वर्ग ही अधिक घाटे में रहे।

- समष्टि स्तर पर चोपड़ा आदि (1990) ने सकल CPR भूक्षेत्र के आंकलन के लिए उनके 9 प्रकार के उपयोग भेदों का विश्लेषण किया। वर्तमान परती भूमि को छोड़कर CPRs को कृषि योग्य बंजर, चारागाह तथा सुरक्षित एवं अवर्गीकृत वन भी इन CPR प्रकारों में सम्मिलित थे। इस वर्गीकरण के आधार पर आंकलन हुआ कि भारत की समस्त भूमि का 21.6 प्रतिशत CPR वर्ग में सम्मिलित था (1980–81 के आंकड़े)। सभी संरक्षित वन CPRs का अंश नहीं है – इस कारण उनका यह अनुमान कुछ अधिक आशावादी हो सकता है। इस अध्ययन ने स्पष्ट किया कि CPRs के वितान और गुणवत्ता में निरंतर ह्रास हो रहा था – यह बात CPR निर्भर आजीविकाओं और स्वयं उक्त प्राकृतिक संसाधनों की धारणीयता के लिए भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य यह था कि गैर-गरीब वर्ग भी CPR से लाभ उठाते थे।

- कुछ अध्ययन दावा करते हैं कि सापेक्ष रूप से भले ही गरीबों को सांझा संपदाओं से अधिक लाभ मिलते हैं किंतु परम रूप से धनी वर्ग कहीं अधिक फायदा उठा जाते हैं (नादकरणी आदि, 1989, पाशा 1992 आदि)। ऐसे भी साक्ष्य मिले हैं कि प्रायः धनी वर्ग CPRs को कब्जा लेते हैं या उनका आबंटन इस प्रकार कर लेते हैं कि उनके अपने हितों का संवर्धन होता रहे (करंट 1992 आदि)।

- विभिन्न पारिस्थितिकीय क्षेत्रों में सकल संसाधनों के अनुपात के रूप में CPRs के आर्थिक महत्त्व में पर्याप्त भिन्नताएं हैं। भारत में शुष्क, पर्वतीय एवं असिंचित क्षेत्रों में ये CPR स्वरूप बहुत ही महत्त्वपूर्ण है तो आर्द्र एवं नदी घाटी क्षेत्रों में इनका अधिक महत्त्व नहीं है (अग्रवाल एवं नारायण, 1989)। इसके पीछे जोखिमों के संकलन की सांझी मंशा ही आधारभूत तर्क प्रतीत होती है। काष्ठभूमियां भौगोलिक दृष्टि से समरूप पारिस्थितिक तंत्र नहीं हैं। किसी वर्ष वन के एक भाग में कुछ वृक्षों के समूह में फल लगते हैं तो अगले वर्ष किसी अन्य भाग में अन्य समूह में। समग्र वन उत्पाद की तुलना में उसके विभिन्न उपभागों के उत्पाद के अनुपातों में, इस प्रकार भारी अंतर आ जाते हैं। यदि इस वन प्रांत को छोटे-छोटे टुकड़ों में बांट दिया जाए तो उत्पादन के ये अंतर शुष्क एवं पर्वतीय क्षेत्रों में तो विशेष रूप से बहुत विराट स्वरूप धारण कर जाएंगे अर्थात् समूचे समाज (सांझा संपदा के अंतर्गत) की अपेक्षा प्रत्येक परिवार को कहीं बहुत भारी जोखिम का सामना करना पड़ जाएगा। भले ही सामुदायिक प्रबंधन के कारण प्रत्येक परिवार की जोखिम में आई औसत कमी कम हो, किंतु इन परिवारों की औसत आय का स्तर भी कम हो, किंतु इन परिवारों की औसत आय का स्तर भी बहुत न्यून होता है। अतः यदि वन प्रदेशों पर सांझा स्वामित्व हो तो प्रत्येक परिवार के सापेक्ष लाभ भी अधिक हो जाते हैं।

तीन प्रकार की CPRs प्रबंधन प्रणालियां सफलतापूर्वक चल रही हैं : (i) संयुक्त वन प्रबंधन (JFM) – यहां सरकार और स्थानिक समुदाय मिलकर कार्य करते हैं, समुदायों की भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण होती है; (ii) जल विभाजिका विकास – यहां सिंचाई और मृदा संरक्षण विभाग ग्रामीण समुदायों के साथ मिलकर कार्य करते हैं, पर सरकार की भूमिका अधिक महती रहती है; और (iii) 'पवित्र वन' क्षेत्र – जहां सरकार का कोई हस्तक्षेप नहीं होता केवल स्थानिक जन समुदाय ही सारा प्रबंधन करते हैं।

15.4.2 वैश्विक सांझी संपदाओं का प्रबंधन

स्थानिक से वैश्विक सांझी संपदा की ओर रुख करें तो परिमाण-वितान और प्रयोक्ता वर्ग के आकार स्वरूप में बहुत भारी अंतर स्पष्ट हो जाते हैं। संसाधन प्रयोक्ता वर्गों की सांझी संस्कृतियों और अपेक्षाओं में अंतर भी स्पष्ट दिखाई पड़ते है। स्थानिक CPR प्रयोक्ताओं में बहुत कुछ समरूपता तो वैश्विक स्तर पर बहुत व्यापक अंतर स्पष्ट दिखाई देते हैं। यही नहीं, अनेक वैश्विक CPR तो मानवीय समयकाल में अनवीकरणीय सिद्ध होते हैं अतः यहां तो संसाधन क्षय एवं पतन किन्हीं प्रयोजकों के लिए अनअपेक्षित परिणाम के रूप में भी हो सकते हैं। इन्हीं कारणों से हमारी पृथ्वी को जलवायु परिवर्तन, वैश्विक ऊष्णन, ओज़ोन परत क्षय, पर्यावरण में शामिल होने के बाद कम से कम 10

लाख वर्षों तक उसे दुष्प्रभावित करने वाले कार्बन उत्सर्जन और अनेक प्रजातियों के विलोपन जैसी भीषण पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। यही नहीं, सर्वसुलभ सागर की धारणा ने भी महासागरों को कचरा गृह और अतिमत्स्य आखेटन का क्षेत्र बना दिया है। इन्हीं कारणों से, ऐसे व्यवहार को नियमित करने वाले कानूनों के अभाव में ये प्रवृत्तियां और विकृत होती जाएंगी, इनके वैश्विक सांझी संपदाओं पर नकारात्मक प्रभाव और भीषण रूप धारण करेंगे – समग्र मानव जाति के लिए पर्या सेवातंत्र जोखिम में पड़ता जाएगा। पर्या क्षय की इस प्रवृत्ति का विकास की धारणीयता और गरीबी निवारण पर आज भी नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। यही नहीं, वैश्विक स्तर पर लागतों, हितलाभों और हितों के स्तरों में भी बड़े भारी अंतर होते हैं, इसी कारण से स्थानिक और वैश्विक CPRs द्वारा सृजित बाध्यताओं के आकारों में भी बड़ा भारी अंतर आ जाता है। वैश्विक सांझी संपदाओं के प्रबंधन के लिए विश्व समुदाय ने अनेक समझौते और संधियां की है। ये हैं : (i) संयुक्त राज्य महासागर सन्नियम समझौता, 1982; (ii) अंतर्राष्ट्रीय जहाज रानी संगठन सहमति पत्र; (iii) संयुक्त राष्ट्र संस्था UNEP की महासागरीय संधियां; (iv) अंटार्कटिक प्राणी एवं वनस्पति विविधता संरक्षण हेतु अंटार्कटिक संधि व्यवस्था (ATS) आदि। अनेक विश्वस्तरीय समझौतों और संधियों द्वारा वातावरण क्षय, वायु प्रदूषण आदि पर नियंत्रण करने की व्यवस्थाएं रची गई हैं। अनेक ऐसे कानून बनाने एवं संधियों पर हस्ताक्षर होने के बाद भी अनेक बहुमुखी चुनौतियां मुँह बाये खड़ी हैं। महासागरीय सन्नियम का एक परिणाम तो 77 विकासशील देशों का यही आग्रह है कि महासागर क्षेत्र और जलगत खनिज भण्डार समस्त मानव जाति की सांझी धरोहर हैं। तर्क की दृष्टि से इनके खनन के लाभ सभी देशों के बीच बंटने चाहिए। वैसी अभी तक गहरे समुद्र तल से खनन इतना लागत प्रभावी नहीं हो पाया है। यही नहीं, संयुक्त राज्य अमेरिका अभी तक इस सांझी धरोहर के तर्क को भी स्वीकार नहीं कर रहा। अंतर्राष्ट्रीय पर्या सन्नियमों के इस भाग का विकास अभी चल रहा है। इसी प्रकार अंटार्कटिका पांचवां विशालतम महाद्वीप है जो पूरी तरह बर्फ से ढका है और इसी में विश्व की 90 प्रतिशत बर्फ तथा 68 प्रतिशत स्वच्छ जलराशि भी समाई है। अतः विश्व की अतिविदोहित मत्स्य प्रजातियों के निवास के साथ-साथ इस महाद्वीप का विश्व के जलवायु पर भी गहरा प्रभाव रहता है। वर्ष 1959 में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अंटार्कटिका के संसाधनों के संरक्षण की व्यवस्था रचे जाने से पूर्व ही अंटार्कटिक महासागर से सील और व्हेल विलुप्त हो रही थीं। वर्ष 1957–58 के अंतर्राष्ट्रीय भू-भौतिकी वर्ष के बाद से अंटार्कटिका का मुख्यतः वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए ही प्रयोग किया जा रहा है। यही नहीं, 1958 की अंटार्कटिका संधि में पर्यासंरक्षण और आर्थिक विकास के मुद्दों की कोई चर्चा भी नहीं हुई थी। किंतु अब प्राकृतिक संसाधनों का विकास अंटार्कटिका प्रबंधन का एक केन्द्रीय मुद्दा बन गया है। एक तो अंटार्कटिका के महासागरीय संसाधनों में रुचि बढ़ती जा रही है, दूसरे, यहां का महासागर व्हेल और महासागरीय स्तनपायी जीवों का निवास होने के कारण भी अंतर्राष्ट्रीय संरक्षण एवं पर्या प्रयासों का एक ध्वज चिन्ह बन गया है। इन कारकों ने विश्व समुदाय को अब उन प्रश्नों पर विचार करने को बाध्य कर दिया है जिन पर 1958 की संधि के समय चर्चा भी नहीं हो पायी थी। प्रारंभिक संधि को अधिक संपूर्ण बनाने के लिए अनेक अन्य समझौतों पर बाद में चर्चा कर प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन के प्रावधान उसमें जोड़े गए है। अंटार्कटिका में खनिज भण्डार होने की संभावना उजागर होने से तो उसके प्रबंधन के अंतर्राष्ट्रीय सहयोग प्रयासों को एक बड़ा धक्का लगा है। अनेक सरकारों ने 1988 में अंटार्कटिका खनिज संसाधन गतिविधियां नियमन संधि (CRAMRA) की रचना तो कर ली थी किंतु अभी तक एक भी देश ने इसकी पुष्टि नहीं की है। पर्यावरण-वादियों के गंभीर विरोध के चलते यह असंभव प्रायः हो चला है कि उक्त संधि का कभी भी अनुमोदन हो पाएगा। इस विवाद ने 1991 के अंटार्कटिका पर्या संरक्षण संलेख को जन्म दिया है। यह संलेख अंटार्कटिका को एक शान्ति एवं विज्ञान को समर्पित प्राकृतिक संरक्षित क्षेत्र के रूप में निरूपित कर रहा है। इस सहमति ने विभिन्न वैज्ञानिक प्रकल्पों के पर्या प्रभावों की समीक्षा के लिए एक पर्या संरक्षण समिति के गठन का मार्ग प्रशस्त किया है। इस संलेख ने वैज्ञानिक अनुसंधान से इतर सभी खनन गतिविधियों पर रोक लगा दी है। इस संलेख पर सभी देशों की पुष्टि की मोहर लगने के 50 वर्ष बाद तक इसमें सभी की सहमति से ही परिवर्तन संभव

है – उससे आगे के 50 वर्ष तक भी केवल बहुमत द्वारा ही उसमें परिवर्तन हो पाएंगे। इस संलेख की सबसे बड़ी कमजोरी तो सभी राष्ट्रों द्वारा 1958 की मूल संधि की पुष्टि पर आग्रह है – यह कार्य अभी तक पूरा नहीं हो पाया है। CRAMRA के प्रारंभिक प्रयास से जुड़े विवादों और बाद में संलेख में किए गए बदलावों को देखते हुए यह नहीं लगता कि यह संलेख कभी विश्वव्यापी संधि का रूप धारण कर पाएगा। आज अंटार्कटिका एक विखंडित अंतर्राष्ट्रीय नियमन व्यवस्था के अधीन है जो यहां के खनिज विदोहन के भीषण पर्या प्रभावों का समाशोधन कर पाने में समर्थ नहीं है।

विकासशील देशों के पास तो पर्या संरक्षण हेतु परिष्कृत प्रौद्योगिकी का नितांत अभाव होने के कारण वे खर्चीली पर्या-प्रभाव समीक्षा भी नहीं कर पाते। भू-वेष्टित विकासशील देशों एवं अन्य भौगोलिक दृष्टि से बाधित देशों को भी महासागरीय मत्स्यन, खनन और वैश्विक सांझी संपदा के अन्वेषण में UNCIOS की व्यवस्थाओं के अनुरूप भागीदारी मिलनी चाहिए। अंत में, अब अनेक क्षेत्रीय आर्थिक और सैन्य गठबंधन सांझी संपदाओं तक पहुंच (संभवतः अधिकार) के लिए लालायित होने लगे हैं। संयुक्त राष्ट्र के तत्त्वाधान में एक वैश्विक प्रशासन तंत्र ही यह सुनिश्चित कर पाएगा कि वैश्विक सांझी संपदाएं भावी पीढ़ियों के लिए अक्षुण्ण बनी रहें।

बोध प्रश्न 3

नोट : लगभग 100 शब्दों में अपने उत्तर लिखें।

1) CPR विषयक अध्ययन सरकार एवं गैर-सरकारी संगठनों की भूमिकाओं के विषय में क्या बताते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) संचयी रूप से सांझी संपदा प्रबंधन के विषय में CPR अध्ययन क्या उद्घाटित कर रहे हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3) भारत में भू-सुधारों की सफलता-विफलता पर संवाद के संदर्भ में भारत में 1980 के दशक में जोधा का अध्ययन किस प्रकार बहुत महत्त्वपूर्ण था?

.....

.....

.....

.....

.....

4) स्थानिक CPRs तथा वैश्विक सांझी संपदाओं के बीच मौलिक अंतर क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

5) संयुक्त राष्ट्र की CRAMRA, 1988 के अंतर्गत विकासशील देशों के लिए पर्या प्रभाव समीक्षा के मंहगे प्रावधानों के क्या निहितार्थ हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

15.5 वैश्विक पर्या बाह्यताएं

अनेक पर्या प्रदूषण समस्याओं में एक से अधिक देश शामिल होते हैं। उदाहरणस्वरूप आप तेज़ाबी वर्षा, ओज़ोन परत क्षरण और महासागरों में तेल रिसाव आदि की चर्चा कर सकते हैं। वैश्विक ऊष्णन तो एक ऐसी जटिल समस्या है जिससे सभी देश किसी न किसी रूप में जुड़े हैं। इन सभी मामलों में विकसित एवं विकासशील देशों की सापेक्ष भूमिकाएं एवं दायित्व भी महत्त्वपूर्ण हो जाती हैं – वे विकास के पृथक-पृथक सोपानों पर हैं और उनके पर्या एवं विकास समप्रत्ययन चयनों में भारी अंतर होते हैं। पर्यावरण पर अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के लिए रियो घोषणा के ये सिद्धांत बहुत सार्थक प्रतीत होते हैं।

सिद्धांत 2 : देशों को अपने क्षेत्र में अपनी पर्या एवं विकास नीतियों के अनुरूप अपने संसाधनों के विदोहन का सार्वभौम अधिकार है और उनका यह दायित्व है कि उनके अपने अधिकार क्षेत्र में उनकी गतिविधियों से अन्य देशों के पर्यावरण को कोई क्षति नहीं हो।

सिद्धांत 6 : विकासशील देशों की, विशेषकर न्यूनतम विकसित और पर्या दृष्टि से सबसे दुर्बलता ग्रस्त देशों की विशेष आवश्यकताओं को विशेष वरीयता दी जाएगी।

सिद्धांत 7 : सभी देश वैश्विक भागीदारी की भावना के साथ पृथ्वी की पारिस्थितिकी के संरक्षण, सुरक्षा, स्वास्थ्य लाभ और अविभाज्यता को बनाए रखने के लिए कार्य करेंगे। पर्या पतन में सभी देशों के अंशभाग असमान रहे हैं, अतः उसे पुनः उन्नयन हेतु सब के दायित्व भी अलग-अलग रहेंगे। विकसित देश स्वीकार करते हैं कि वे धारणीय विकास की अंतर्राष्ट्रीय अन्वेषण इस दायित्व बोध के साथ करेंगे उनके अपने समाज वैश्विक पर्यातंत्र पर बहुत अधिक बोझ डाल रहे हैं और उन्हीं के पास इसके निवारण के लिए प्रौद्योगिकी एवं वित्तीय संसाधन भी सुलभ हैं।

सिद्धांत 9 : देशों को आर्थिक संवृद्धि तथा धारणीय विकास हेतु वैज्ञानिक सूझबूझ को बढ़ावा देने वाले विज्ञान-प्रौद्योगिकी के आदान-प्रदान के माध्यम से आंतरिक क्षमता संवर्धन तथा प्रौद्योगिकी के विकास, उसे आत्मसात् करने और नए एवं नवप्रणववादी विचारों के अंतरण-प्रयोग में मिल-जुलकर काम करना होगा।

सिंद्धांत 12 : देशों को एक निर्बन्ध अर्थव्यवस्था के विकास को बढ़ावा देना होगा जो सभी देशों में आर्थिक संवृद्धि और धारणीय विकास का माध्यम बनकर पर्या पतन की समस्याओं का बेहतर समाधान प्रस्तुत कर सके। पर्या उद्देश्यों से व्यापार नीति उपायों को मनमाने ढंग से तोड़-मरोड़ कर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर विकृतिपूर्ण बाधाओं का रूप नहीं लेना चाहिए।

सांझे किंतु स्तरीकृत दायित्व (CBDR) के नियम को व्यापार समझौतों (युरुग्वे दौर), ओज़ोन क्षय (मॉन्ट्रीयल समझौता), जलवायु परिवर्तन (जलवायु परिवर्तन पर समझौते की रूपरेखा) और जैविक विविधता (जैविक विविधता संलेख) में स्थान प्राप्त हुआ है। UNDP तथा संयुक्त राष्ट्र पर्या कार्यक्रम और वैश्विक पर्या कोष (UNEPGEF) के माध्यम से विकासशील देशों के लिए क्षमता निर्माण हेतु वित्तीय सहयोग के विशेष कार्यक्रम प्रारंभ किए गए है। किंतु पर्याधारणीय प्रौद्योगिकी के विकासशील देशों को रियायती दरों पर अंतरण तथा कई विकसित देशों द्वारा पर्या मानकों के गैर-शुल्क व्यापार बाधाओं के रूप में प्रयोग आदि के कई मुद्दे विवादास्पद बने हुए हैं।

15.5.1 जलवायु परिवर्तन

यहां मानवीय गविधिधियों के कारण भू-तल के तापमान में आए परिवर्तन से ही तात्पर्य है। वैज्ञानिक समाज इस बात पर सहमत है कि इसका मुख्य कारण भू-प्रयोजन में अंतर और जीवश्मीय ऊर्जा के प्रयोग ही हैं। कार्बन डाईऑक्साइड जैसी दीर्घ जीवी गैसों के वायुमंडल में संकुलित हो जाने से ऊष्मा वहीं जमा होने लगती है और इसके तापमान एवं जलकणों के वाष्पीकरण आदि पर गंभीर हानिकारक प्रभाव पड़ते हैं। इसी प्रक्रिया को वैश्विक ऊष्मण का नाम दिया जाता है। हम जानते हैं कि वातावरण तो सर्वसुलभ वैश्विक सांझी संपदा है और इसमें बिखरे हुए वैयक्तिक स्तर की आर्थिक गतिविधियों ने अपने उत्सर्जन रूपी कचरे का विपुल भण्डार जमा कर दिया है। यह भण्डार अब उस निर्णायक स्तर तक पहुँच गया है जहां यह हमारे जलवायु तंत्र के साथ खतरनाक रूप से खिलवाड़ कर सकता है। हमारे समक्ष चुनौती यही है कि विखंडित निर्णय प्रक्रियाओं को वैश्विक सांझी संपदा के सुदक्ष एवं धारणीय प्रयोग के अनुरूप किस प्रकार ढाला जाए।

15.5.1.1 आर्थिक विश्लेषण

आज नीति निर्माण हेतु इन पक्षों का अध्ययन किया जा रहा है कि मानवीय गतिविधियां किस प्रकार जलवायु में परिवर्तन कर रही हैं और ये परिवर्तन किस प्रकार जटिल पर्यातंत्र के माध्यम से मानवीय गतिविधियों को प्रभावित कर रहे हैं। वैज्ञानिकों ने ऐसे प्रतिमान बनाए हैं जो पृथ्वी के वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड के स्तर के दुगुने होने के प्रभावों को उजागर करते हैं। इनमें से कुछ प्रभाव हैं : (i) समुद्र जल स्तर में वृद्धि के कारण जलीय एवं स्थलीय भू-क्षेत्रों की हानि; (ii) प्रजातियों एवं वन क्षेत्रों की हानि, अधिक वन दहन; (iii) ग्लेशियरों और ध्रुवीय हिम आगारों के पिघलने से भीषण जल आप्लावन की आशंका; (iv) व्योम मंडल के ठंडे होने की अतिशय लागतें; (v) लू लगने, कुपोषण और विभिन्न महामारी कारक रोगों के कारण भारी जनहानि; (vi) कृषि उत्पादन एवं खाद्य सुरक्षा की हानि; (vii) बड़े स्तर पर प्रवसन की विवशता आदि। कतिपय क्षेत्रों में इस प्रक्रिया के कुछ अल्पकालिक सकारात्मक प्रभाव भी संभव है। ये होंगे : (i) ठंडे क्षेत्रों में अधिक कृषि उत्पाद, अधिक CO_2 के कारण उच्चतर प्राथमिक उत्पादन; (ii) गर्मी पैदा करने की लागतों में कमी। किंतु आज भविष्य के घटनाक्रम का अधिक विश्वस्त पूर्वाकलन संभव होता जा रहा है। चुनौती यही है कि ऐसी बड़ी घटनाओं के आर्थिक हितलाभों और लागतों की सटीक समीक्षा कर विभिन्न आक्समिकताओं का ध्यान रखते हुए उचित नीतिगत उपाय किस प्रकार बनाए एवं अपनाए जाएं।

15.5.1.2 लागत-हितलाभ विश्लेषण

कार्बन उत्सर्जन को रोका नहीं गया तो उसके निरंतर वृद्धिशील रहने की आशंका है। अतः उसके प्रभावों की रोकथाम के लिए ऐसी नीतियां तुरंत अपनाने की आवश्यकता है जो आगामी दशकों में CO_2 उत्सर्जनों को घटाने और रोकने में सहायक हो सकें। इस संदर्भ में लागत हितलाभ विश्लेषण में इस आशंकित कार्बन उत्सर्जन की सामाजिक लागतों तथा इन उत्सर्जनों के निवारण की लागतों की तुलना की जाती है। सभी आर्थिक क्षेत्रकों में कार्बन उत्सर्जन को कम करने की संभावनाएं विद्यमान हैं – उनकी एवं उनकी लागतों की पहचान करना आवश्यक है। अध्ययन दर्शा रहे हैं कि आज कार्बन उत्सर्जन निवारण की लागतें भविष्य में संभावित हानि से कहीं कम हैं। अतः भावी

हानि से बचने के लिए आज हरित गृह (GHG) उत्सर्जनों पर लगाम लगाना आर्थिक दृष्टि से अधिक उपयुक्त होगा।

15.5.1.3 दीर्घकालिक पर्या प्रभाव

भावी लागतों और हितलाभों का मूल्यांकन एक 'काटा दर' के प्रयोग द्वारा किया जाता है। इस दर के चयन में निहित मूल्यमान ही लागतों एवं हितलाभों के मूल्यांकन को बहुत अनिश्चित एवं दुरूह बना देते हैं। इसी से प्रेरणा मिलती है कि वैकल्पिक विधियों का प्रयोग होना चाहिए जो पर्यातंत्रीय एवं आर्थिक लागतों और हितलाभों का समन्वित आंकलन कर सके। जलवायु परिवर्तन के दो विशद् अध्ययन बहुत ही अलग-अलग निष्कर्षों में पहुँचे हैं। विलियम नॉर्धास का अध्ययन सुझाता है कि वर्तमान आर्थिक विकास धारा के अनुरूप चलते हुए कार्बन ऊर्जा आधारित तंत्र में बस हरित गैस उत्सर्जनों में मामूली-सी कटौती करना पर्याप्त रहेगा। इसके विपरीत विलियम क्लाइन की सिफारिश है कि विश्व स्तर पर एक बड़े वैश्विक ऊष्णन को रोकने के प्रयास की जरूरत है, इसके लिए वर्तमान कार्बन उत्सर्जन स्तर में बड़ी कटौती कर उसे भविष्य में जरा भी नहीं बढ़ने देने का संकल्प करना होगा। निष्कर्षों में इन बड़े अंतरों का कारण यही है कि क्लाइन के अध्ययन में वर्तमान एवं भावी लागतों के समीकरण के लिए एक निम्न काटा दर (1.5 प्रतिशत) का प्रयोग है। यद्यपि आज सक्रिय प्रयास की लागत संभावित भावी लाभों से कई दशकों तक अधिक बनी रहेगी किंतु भविष्य में अकूत हानि की आशंका आज अधिक लागत सहन करने की युक्ति को अपनाने को प्रेरित कर सकती है। यद्यपि क्लाइन और नॉर्धास, दोनों ने ही प्रामाणिक आर्थिक विधियों का प्रयोग किया है, क्लाइन ने उन दीर्घकालिक पर्या प्रभावों को अधिक भार मान दिया है जो अपने आर्थिक एवं गैर-आर्थिक प्रभावों के कारण उन्हें अधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत हो रहे हैं। यदि 5–10 प्रतिशत की प्रायः प्रयुक्त काटा दरों का प्रयोग किया जाए तो महत्त्वपूर्ण दीर्घकालिक प्रभावों का वर्तमान मूल्य बहुत ही कम रह जाता है। अतः एक पर्यातंत्र प्रेरित तर्क तो यही होगा कि वैश्विक जलवायु की स्थिरता को लक्ष्य बनाना चाहिए, न कि आर्थिक हितलाभों एवं लागतों के अभीष्टीकरण को। हां, यह भी कहा गया है कि केवल GHG के स्तर को स्थिर करना पर्याप्त नहीं होगा। विश्व जलवायु परिवर्तन की आशंका को टालने के लिए निवेश के वर्तमान स्वरूप को ही बदलना होगा। यही कारण है कि दूरदर्शिता के अभाव से ग्रस्त सरकारें ऐसे उपाय अपनाने को उत्सुक नहीं लगती जो CO_2 के दीर्घकालिक प्रभावों का शमन करने में समर्थ हों।

15.5.1.4 नीतिगत प्रयास

जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के प्रति दो प्रकार के नीति उपाय अपनाए गए हैं : (i) बचाव उपाय – ये हरित गृह प्रभावों को कम करने के उपाय हैं; और (ii) आत्मसात् करने के उपाय – यहां हरित गृह गैसों के हानिकारक प्रभावों को न्यूनतम करते हुए उनके साथ जीना सीखने पर आग्रह रहता है। बचाव के उपायों में शामिल हैं : (i) आर्थिक ऊर्जा दक्ष प्रौद्योगिकी अपनाकर, ईंधन प्रयोग में बदलाव लाकर ईंधन/ऊर्जा की मांग को घटाकर उत्सर्जन स्तर कम करना; और (ii) कार्बन संग्रहणों, वन क्षेत्रों और महासागरों की कार्बन धारण क्षमता को बढ़ाना। आत्मसात् करने के उपाय प्रभावों के जोखिम घटाने पर आग्रह करते हैं। ये हैं : (i) पारिस्थिति तंत्र आधारित उपाय, तटबंधों को ऊँचा उठाकर समुद्र जल को रोकना, तटीय बाढ़ का निवारण करना और संभावित चक्रवातों से हानि का शमन करना; तथा (ii) आर्थिक क्षेत्रवार उपाय, जैसे कि फसल ऋतु चक्र में परिवर्तन, बीजों के नए प्रकारों का विकास, ताकि कृषि हानि से बचाव हो सके तथा स्वास्थ्य संबंधी पूर्वोपाय आदि।

आर्थिक दृष्टिकोण का आग्रह रहता है कि जब अनिश्चितता हो तो हितलाभों का सही अनुमान नहीं हो पाता। वहां लागत प्रभावित विश्लेषण नीति उपाय सुझा सकता है। बाजार आधारित वैश्विक कार्बन कीमतें, कार्बन कर और विक्रय योग्य कार्बन प्रमाण-पत्र आदि हरित गृह गैस उत्सर्जन के प्रबंधन के ही उपाय है। इन्हीं उपायों पर हम आगे चर्चा कर रहे हैं।

कार्बन कर : वातावरण में हरित गृह गैस उत्सर्जन नकारात्मक बाह्यताओं का ऐसा उदाहरण है जिसकी विश्वस्तर पर भारी लागतें पड़ती हैं। कोयला, तेल आदि कार्बन आधारित ईंधनों के बाजार केवल निजी लागतों और हितलाभों पर विचार करते हैं – इनसे प्राप्त बाजार संतुलन सामाजिक अभीष्ट के विचार से बहुत दूर रह जाते हैं। बाह्य लागतों को आत्मसात् करने की एक मानक आर्थिक विधि प्रति इकाई प्रदूषण कर लगाना है। दूसरे शब्दों में, एक कार्बन (उत्सर्जन) कर कार्बन आधारित ईंधन का प्रयोग करने पर आरोपित किया जा सकता है। ऐसी नीति इन ईंधनों की कीमतें बढ़ा कर इनका उपयोग करने वालों को अन्य विकल्पों की खोज को प्रेरित करती है। यहां उच्च कार्बन उत्सर्जन ईंधन (कोयला) से प्राकृतिक गैस जैसे निम्न कार्बन ईंधन की ओर बदलाव भी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है। यद्यपि कार्बन कर उपभोक्ता की दृष्टि से ईंधन कीमत में वृद्धि जैसा लगता है फिर भी यह कर उत्पादक और उपभोक्ता दोनों वर्गों के लिए अधिक कार्बन सघन ईंधनों से दूर हटकर नवीन वैकल्पिक प्रौद्योगिकी के विकास एवं संवरण का मार्ग प्रशस्त करता है।

विक्रय योग्य अनुज्ञा पत्र : यह वैकल्पिक प्रदूषण अनुज्ञा पत्र नीति इस प्रकार कार्य करती है : प्रदूषण निवारण के वांछनीय लक्ष्य की प्राप्ति के आधार पर प्रत्येक देश को प्रदूषण फैलाने की अनुमति देने वाले अनुज्ञा पत्रों की संख्या विशेष का आबंटन किया जाता है। मान लें कि वर्तमान वैश्विक प्रदूषक उत्सर्जन 8 बिलियन टन है और इसे घटाकर 5 बिलियन टन लाने का लक्ष्य है तो फिर 5 बिलियन टन के प्रदूषण पत्र जारी किए जाएंगे। ये पत्र निर्गम क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर प्रदूषण निवारण के लक्ष्यों के अनुरूप होंगे। उदाहरण के लिए, 1997 के क्योटो समझौते में संयुक्त राज्य ने 2008–12 में अपना उत्सर्जन 1990 के स्तर से 7 प्रतिशत घटाने की बात स्वीकार की थी तो जापान ने 6 प्रतिशत और यूरोपीय समुदाय ने 8 प्रतिशत कटौती का वचन दिया था। यदि संयुक्त राज्य अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पाता और यूरोप सफल रहता तो वह यूरोप से कुछ अनुज्ञा पत्र खरीद कर अपना कोटा पूरा हुआ दिखा सकता था। ऐसे अनुज्ञा पत्रों का क्रय-विक्रय विभिन्न फर्मों के बीच भी चल सकता है। देश विभिन्न उद्योगों के लिए प्रदूषण निवारण के लक्ष्य तय कर सकते हैं और उन्हें अनुज्ञा पत्र आबंटित कर सकते हैं। देशों और फर्मों को प्रदूषण निवारण की उपलब्धियों (आबंटन से कम प्रदूषण फैलाने) का श्रेय मिलता है, उससे वे दूसरे देशों में अपने कार्यों का वित्तीयन भी कर सकते हैं। उदाहरण, अमेरिकी फर्में चीन में अधिक दक्ष विद्युत संयंत्रों द्वारा प्रदूषणकारी कोयला आधारित संयंत्रों को विस्थापित करने का श्रेय पा सकती है।

आर्थिक दृष्टि से विक्रय योग्य अनुज्ञा पत्रों की प्रणाली के लाभ यही है कि यह न्यूनतम लागत वाले कार्बन निवारण विकल्पों को लागू करने में सहायक होती है। अनुज्ञा पत्रों के आबंटन के आधार पर विकासशील देश अपने विकास में गैर कार्बन उत्सर्जक तकनीकें अपनाते हुए अपने आबंटित अनुज्ञा पत्रों को ही एक निर्यात योग्य पदार्थ की भांति प्रयोग कर सकते हैं। ये पत्र उन औद्योगिकीकृत देशों को बेचे जा सकते हैं जो अपने कार्बन निवारण लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर पा रहे।

अन्य नीति विकल्प : साहय्य, मानक, शोध एवं विकास तथा प्रौद्योगिकी अंतरण: यद्यपि राजनीतिक कारणों से व्यापक स्तर पर पर्या परिवर्तन के प्रति कार्बन कर या विक्रय योग्य पत्रकों की नीति अपनाना दुष्कर हो सकता है किंतु संभावी कार्बन उत्सर्जन निवारण के लिए अन्य नीति विकल्प भी सुलभ हैं। ये हैं : (i) कार्बनिक से गैर-कार्बनिक ईंधनों की ओर साहाय्यों का अंतरण; (ii) ऊर्जा दक्षता मानकों का निर्धारण (भारत सरकार के ऊर्जा दक्षता ब्यूरो द्वारा नियत निष्पादन, उपलब्धि और व्यापार की प्रक्रिया); (iii) शोध एवं विकास व्यय को प्रोत्साहित कर वैकल्पिक प्रौद्योगिकी का व्यवसायीकरण; तथा (iv) विकासशील देशों को प्रौद्योगिकी के अंतरण को सरल बनाना (CDM) प्रक्रिया। ऊर्जा और वैश्विक जलवायु परिवर्तन संबंधी नीतियों का भावी पथ वैज्ञानिक साक्ष्यों और सहयोग द्वारा ही निर्धारित होगा।

बोध प्रश्न 4

नोट : निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 100 शब्दों में लिखें।

1) व्यापार और पर्यावरण के संदर्भ में वे तीन प्रमुख मुद्दे बताएं जिन पर विकसित और विकासशील देशों में टकराव बना हुआ है।

.....

.....

.....

.....

.....

2) 'वैश्विक ऊष्णन से क्या अभिप्राय है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) वैश्विक पर्या बाह्यता पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को घटाने के लिए लागत हितलाभ विधि विभिन्न देशों को क्या सुझाती है?

.....

.....

.....

.....

.....

4) लागत हितलाभ विश्लेषण में बहुत ही अलग-अलग काटा दरों के प्रयोग पर आग्रह ने क्या धारणीय पर्या विकल्प छोड़ा है? क्या यह प्रस्तावित विकल्प पर्याप्त रहेगा?

.....

.....

.....

.....

.....

5) वे मान्यताएं क्या हैं जिन पर उत्सर्जन स्थिर करने के उपायों के परिणाम निर्भर करेंगे?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

6) कार्बन कर क्या है? इसके सामाजिक हितलाभ क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

7) पर्या बाह्यताओं के निवारण के लिए कार्बन कर तथा विक्रय योग्य अनुज्ञा पत्रों के अतिरिक्त अन्य विकल्प क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

15.6 सारांश

CPR एक ओर अत्यंत निर्धन परिवारों के लिए आय का स्रोत है तो दूसरी ओर धारणीय विकास के लिए इनका संरक्षण भी महत्त्वपूर्ण है। इनके कुशल प्रबंधन से दोनों ही लक्ष्य पूरे हो सकते हैं। इसी पृष्ठभूमि में CPRs के समक्ष प्रस्तुत अनेक प्रकार की चुनौतियों पर इस इकाई में विचार किया गया है। विभिन्न सैद्धांतिक एवं संकल्पनागत प्रश्नों के स्पष्टीकरण के साथ-साथ इकाई में अधिक स्वच्छ ऊर्जा स्रोतों एवं प्रौद्योगिकी अंतरण के लिए कार्बन कर, विक्रय योग्य अनुज्ञापत्रों के निर्गम तथा शोध एवं विकास जैसे नीति विकल्पों पर भी चर्चा की गई है।

15.7 शब्दावली

पश्चरोधी प्रौद्योगिकी : प्रचुरता से उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग कर समापनीय संसाधन आधारित उत्पाद करने वाली नवीन प्रौद्योगिकी। इससे वर्तमान समापनीय संसाधन भण्डार या मूल्य उस समय शून्य प्रायः हो जाता है जब नव-विकसित विकल्प की औसत लागत समापनीय साधन के तात्कालिक बाजार मूल्य से कम हो जाए। उदाहरणः अब सौर ऊर्जा की प्रौद्योगिकी तेल, कोयला और प्राकृतिक गैस के लिए एक पश्चरोधी प्रौद्योगिकी बनने के कगार पर है।

जैविक विविधता : विश्वस्तर जीव प्रजातियों में पायी जाने वाली बहुलता– प्रजातियों के उपवर्ग भी इसी में शामिल हैं। यह विभिन्न पारिस्थितिकी परिवेशों में विद्यमान जीवों की बहुलता का द्योतक है। यह बहुलता पृथ्वी के सभी भागों में समान रूप वितरित नहीं है। पश्चिमी प्रशांत तट पर महासागरीय जैविक विविधता का स्तर उच्चतम आंकलित हुआ है।

उपभोग समानीकरण : व्यक्तियों की समान स्तर पर ही उपभोग करते रहने की इच्छा की सूचक संकल्पना।

प्रबल युक्ति संतुलन : अन्य द्यूतभागी कुछ भी करें, प्रबल युक्तियां ही बेहतर होती हैं। द्यूत सिद्धांत में दो प्रकार की यौक्तिक प्रबलता की चर्चा हुई है : सबल प्रबलता और निर्बल प्रबलता। पहली प्रकार की युक्ति से उसे प्रयोग करने वाले को सदैव अधिक उपयोगिता की प्राप्ति होती है, उसके प्रतिद्वंद्वी कुछ भी करें। दूसरी दशा में, उसे भी अन्य क्रीड़ा भागियों जितनी ही उपयोगिता अवश्य मिलती है। हाँ, किसी एक युक्ति में उसे अधिक भी मिल सकती है। जब प्रत्येक प्रतिद्वंद्वी अपनी प्रबल युक्ति को प्रयोग करता है तो उस दशा में प्राप्त संतुलन की प्रबल युक्ति संतुलन कहलाता है।

मुफ्तखोरी : वह दशा जहां किसी समुदाय के कुछ सदस्य अपने उचित हिस्से से अधिक हस्तगत कर जाएं या सांझे संसाधन की उचित लागत न चुकाएं। ऐसी दशा में सार्वजनिक पदार्थों का अल्प प्रावधान ही हो पाता है – क्योंकि कुछ लोग लागत अंश भरे बिना ही उपभोग कर जाते हैं।

भीड़ का व्यवहार : यह व्यक्तियों की किसी बड़े समुदाय की नकल करने की आदत का नाम है। संभव है कि अकेले में सही या गलत कोई वैसा करने की बात भी न सोचे। ऐसे व्यवहार के कई कारण हैं : (i) समाज के साथ चलने का दबाव; (ii) धारणा कि इतने लोग गलत नहीं हो सकते। जहां स्वयं को अनुभव नहीं हो वहां तो अन्धानुकरण और भी अधिक होता है।

नैतिक द्वंद्व : यह जानकारी की विषमता की वह स्थिति है जिसमें एककर्ता किसी अन्य की ओर से काम करता है। इस कर्ता के पास प्रायः मूल प्रयोक्ता की अपेक्षा अधिक जानकारी होती है – और वह प्रयोक्ता इस कर्ता पर पूरी निगरानी नहीं कर पाता। कई बार कर्ता अपने ही किसी प्रयोजन की सिद्धी में जुट जाती है। भले ही, वह मूल प्रयोक्ता के हितों के साथ मेल नहीं खाते हों।

नैश संतुलन : सहयोग रहित योक्तिक द्यूत – पूर्ण जानकारी वाले स्थैतिक द्यूत में यही पारस्परिक हितकर युक्ति होती है। यदि अन्य प्रतिद्वंद्वी अपने श्रेष्ठतम निर्णय लेते हैं तो यही हमारे कर्ता के लिए सबसे उपयुक्त युक्ति होती है। कोई भी खिलाड़ी चुपके से फायदा उठाने के प्रयास नहीं करता। यह नैश संतुलन स्वयं प्रभावी होते हैं – सभी जानते हैं कि इससे दूर हटने का प्रयास नुकसानदेह होगा।

नकारात्मक बाह्यता : जब कोई व्यक्ति/फर्म अपने निर्णय की पूरी लागत नहीं उठाता तो वह अन्य इकाइयों को

वह लागत सहन करने को बाध्य कर देता है। ऐसी दशा में उस निर्णय की समाज के लिए लागत व्यक्तिगत लागत की अपेक्षा अधिक हो जाती है। यदि उचित प्रतिकार नहीं किया जाए तो इससे बाजार में दक्षताहीनता का संचार हो जाता है। प्रदूषण ऐसी ही नकारात्मक बाह्यता का एक उदाहरण है।

जलविभाजिका : यह विचार किसी भू-क्षेत्र में जल प्रवाह के स्वरूप पर आधारित है। यदि एक ही निकास प्रवाह हो तो उसे छोटी विभाजिका कहते हैं। जहां एक प्रवाह क्षेत्र का दूसरे से संयोग होता है वहां जल विभाजिका का विचार बदल जाता है।

15.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Baland, Jean Marie, Pranab Bardhan and Samuel Bowles (2007), Inequality, Cooperation and Environmental Sustainability, Oxford University Press, New Delhi.
2. Bert Metz (2011), Controlling Climate Change , Cambridge University Press .
3. Bhattacharya, Rabindranath (2002): Environmental Economics (ed.), Oxford University Press.
4. Cline, William R (1992), The Economics of Global Warming. Washington D.C.: Institute for International Economics. ISBN: 088132132X
5. Conrad, J. and C Clark (1987), Natural Resource Economics: Notes and Problems, Cambridge: Cambridge University Press.
6. Hardin, Garett (1968), The Tragedy of the Commons, Science, New Series, Vol. 162, No. 3859, pp 1243-1248. [URL: http://www.jstor.org/stable/1724745].
7. Inter Government Panel on Climate Change Assessment Reports 4 and 5 of WG I, WG II, WG III.
8. Kadekodi, Gopal K (2004), Common Property Resource Management : Reflections on Theory & Indian Experience, Oxford University Press, New Delhi.

Note: Other references can be accessed by google search.

15.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

नोट : सभी बोध प्रश्नों के उत्तर उनके सामने इंगित अनुच्छेद-अंशों को पढ़ने के बाद ही लिखें।

बोध प्रश्न 1

(1) 15.2 (2) 15.2.1 (3) 15.2.2 (4) 15.2.3

बोध प्रश्न 2

(1) 15.3.1 (2) 15.3.2 (3) 15.3.2 (4) 15.3.3 (5) 15.3.4

बोध प्रश्न 3

(1) 15.4 (2) 15.4 (3) 15.4.1 (4) 15.4.2 (5) 15.4.2

बोध प्रश्न 4

(1) 15.5 (2) 15.5.1 (3) 15.5.1.2 (4) 15.5.1.3 (5) 15.5.1.3 (6) 15.5.1.4 (7) 15.5.1.1

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY